वामालोक

काव्य संग्रह

अर्चना अनुप्रिया

अन्तरा-शब्दशक्ति प्रकाशन

चित्र- आदित्य सिन्हा

वामा-लोक

(स्त्री विमर्श की कविताएँ)

अर्चना अनुप्रिया

अन्तरा शब्दशक्ति प्रकाशन
वारासिवनी, मध्यप्रदेश

978-93-5372-247-0

संपादक- डॉ; प्रीति समकित सुराना

तकनीकी संपादक एवं आवरण चित्र- संदीप कुमार सोनी, वारासिवनी

मुख्य कार्यालय- 15 नेहरू चौक, वारासिवनी, जिला बालाघाट (म.प्र.) 481331

मोबाईल- 9424765259, 9009465259

ईमेल- **antrashabdshakti@gmail.com**

वेबसाईट- **www.antrashabdshakti**

प्रथम संस्करण- 2020, अर्चना अनुप्रिया

मूल्य- 250.00 रूपये

मुद्रक- शैलू कम्प्युटर्स, वारासिवनी

THE BOOK WRITTEN BY ARCHNA ANUPRIYA

वैधानिक चेतावनीः- इस पुस्तक का सर्वाधिकार सुरक्षित है। लेखक की लिखित अनुमति के बिना इसके किसी भी अंश को फोटोकॉपी एवं रिकार्डिंग सहित इलेक्ट्रोनिक अथवा मशीनी किसी भी माध्यम में अथवा संग्रहण और पुनर्प्रयोग की प्रणाली द्वारा किसी भी रूप में पुनरूत्पादित अथवा संचारित प्रसारित नहीं किया जा सकता है। प्रस्तुत पुस्तक की समस्त रचनाएँ लेखक द्वारा अन्तरा-शब्दशक्ति प्रकाशन को प्रेषित की गई है। अतः प्रत्येक रचना की मौलिकता के किसी भी दावे हेतु लेखक जिम्मेदार है। प्रस्तुत पुस्तक के घटनाक्रम पात्र, भाषाशैली एवं स्थान सभी लेखक की कल्पना है। किसी भी प्रकार के वाद-विवाद के लिए प्रकाशक का सहमत होना अनिवार्य नहीं है।

समर्पण

यह पुस्तक उन सभी स्त्रियों को समर्पित है, जो परेशानियों और संघर्षों से जूझती, स्वयं को संतुलित रखती हुई जीवन के पथ पर न केवल अग्रसर हैं, बल्कि औरों के लिए भी उदाहरण प्रस्तुत कर रही हैं।

प्रार्थना

नवल सृजन कर, नव जग कर दे,
सत्य, मानवता हर उर में भर दे।।

हे वीणापाणि माँ, दे सम्यक ज्ञान,
उठे लेखनी तो, करे लक्ष्य संधान।।

बसो जिह्वा पर माँ, सुन लो पुकार,
करूँ शब्द-सृजन से विस्मित संसार।।

माँ करो कृपा हो हर जन का विकास,
नव पल्लव फलें, रच दें इतिहास।।

नयी चेतना बुनें नया खुला आकाश,
फैला दें उज्जवल, निश्छल प्रकाश।।

हे हंसवाहिनी! करो मन में रमण,
माँ! दो आशीष, करती हूँ नमन।।

कुछ विचार

"वामा-लोक" मेरा दूसरा एकल काव्य संग्रह है, जिसमें स्त्री-विमर्श की ऐसी 90 कविताएँ संग्रहित हैं जो नारी के एक स्त्री-भ्रूण होने से लेकर उसके हर उम्र की, हर रूप की मनोदशा को दर्शाती हैं। यह काव्य संग्रह संपूर्ण रूप से स्त्रियों को समर्पित है, जो न केवल घर के अंदर वरन् घर की चहारदीवारी के बाहर भी हर क्षेत्र में सृजनकर्ता की भूमिका बखूबी निभा रही हैं।

एक प्रश्न हमेशा मेरे मन में उठता रहता है कि स्त्रियों को 'देवी' क्यों मानना चाहिए, इंसान क्यों नहीं? इस प्रश्न को लेकर अक्सर मैं स्वयं से जूझती रहती हूँ...सोचती हूँ कि क्यों वह देवी की तरह पत्थर की मूरत बने, क्यों इंसानों की तरह उसे सोचने, महसूस करने या बोलने का हक नहीं होना चाहिए? क्या चाहती है दुनिया?.... पूजा करने योग्य बने रहने के लिए उसे भी मंदिर में रखे पत्थर की देवी की तरह खामोश रहना चाहिए... अपने अंदर की संवेदनाएँ, इच्छाएँ, आत्मा की स्वतंत्रता कुचल देनी होंगी? कोई छेनी हथौड़ी चलाए... तो भी चुप... कोई दूध से नहलाये.. तो भी चुप... इधर से हटाकर उधर रख दे या बिल्कुल अस्तित्व ही समाप्त कर दे परंतु उसके मुख से एक आवाज भी नहीं आनी चाहिए। एक जीती जागती पाषाण देवी, जो प्रसव पीड़ा से गुजरे तो उसे अपना कर्तव्य माने, पुरुषों के यौन-सुख के लिए बिस्तर का श्रृंगार बने तो वह उसका कर्म कहलाए, अपने ही परिवार और बच्चों द्वारा प्रताड़ित होकर भी सहनशील बनी रहकर उन्हीं की चिंता में लगी रहे तो वह उसका धर्म कहलाए और अगर अन्याय के खिलाफ कुछ बोले, अपनी इच्छाओं को पूरा करने की कोशिश में लगे या अपने अधिकार के लिए लड़े तो लांछन ही झेलना होगा... क्यों? मेरे

हिसाब से ऐसे देवी के ओहदे से तो साधारण इंसान होने का ओहदा ही हर औरत अपने लिए पसंद करेगी। पुरुषों की तरह ही साधारण मनुष्य रूप में वेदनशील रहकर सपने देखना और उन्हें पूरा करने के अधिकार के लिए प्रयासरत होना नारी के लिए ज्यादा जरूरी और सार्थक है। वह अच्छी है तो बुरी भी बन सकती है, शक्तिशाली है तो कमजोर भी हो सकती है, ममता प्रेम लुटाती है तो दुश्मनी निभाना भी जानती है... इसीलिए नारी को देवी नहीं... नारी ही रहने दो.... इसी में उसकी खुशी है, उल्लास है, सपने हैं, अधिकार है... एक संपूर्ण जीवन-यात्रा है।

इस संग्रह के माध्यम से स्त्री संबंधित ऐसे ही ज्वलंत प्रश्नों को कुरेदने की कोशिश की है। साथ ही, कई मामलों में स्त्रियों की मनोदशा को समाज के सामने ईमानदारी से प्रस्तुत करने का प्रयास भी मैंने किया है। उम्मीद है, स्त्री-विमर्श का यह काव्य-संग्रह पाठकों के दिलों में अपनी जगह बना सकेगा।

अर्चना अनुप्रिया

अनुक्रमणिका

1.	**स्त्री...**	10
2.	**स्त्री-भ्रूण**	11
3.	**प्रसव का सुख**	12
4.	**लाडली गुड़िया**	13
5.	**गुड़िया के प्रश्न**	14
6.	**बचपन**	15
7.	**कुछ बोलती है बेटी**	16
8.	**बेटियाँ**	17
9.	**चाँदनी मैं आँगन की**	18
10.	**कोमलांगिनी**	19
11.	**चपला**	20
12.	**बेटी की सीख माँ को**	21
13.	**अमिया**	22
14.	**चिड़िया**	23
15.	**विद्रोहिणी**	24
16.	**दामिनी अभी जिंदा है**	25
17.	**अस्मिता**	26
18.	**कुछ तो करें**	27
19.	**परिणीता**	28
20.	**बेटी बनी बहू**	29
21.	**माँ की नसीहत- बेटी की विदाई**	30
22.	**रसोई में स्त्री**	31
23.	**औरतों की होली**	32
24.	**करवाचौथ का चाँद**	33
25.	**हमसफर हैं हम**	34

26.	हाथों में हाथ	35
27.	गौरी के गेसू	36
28.	तुम से..तुम तक	37
29.	कितने अजीब हैं हम	38
30.	माँ	40
31.	माँ का पद	41
32.	माँ का आँचल	42
33.	गृहिणी	43
34.	जीने की कला	44
35.	नारी तुम श्रद्धा हो	45
36.	नारी और धरा	46
37.	कहाँ है घर?	47
38.	चढ़ती बेल	47
39.	नारी की दुश्मन नारी	48
40.	खुद को जानती हूँ मैं	49
41.	किटी पार्टी	50
42.	मुझे ऐतराज़ नहीं	51
43.	क्या है नारी.	52
44.	हे माँ शारदे,वर दे	53
45.	नवदुर्गा	54
46.	हे छठी मईया	55
47.	अराधना	56
48.	गंगा-गीत	57
49.	झाँसी की रानी	58
50.	द्रौपदी-चीरहरण	59
51.	कैकेयी	60
52.	यशोधरा	61

53.	बढ़ती जाऊँगी	62
54.	देखूँगी सपने	63
55.	तमसो मा ज्योतिर्गमय	64
56.	परदेश न जाये पी मेरा	65
57.	प्रेयसी	66
58.	अज्ञात आकुलता	67
59.	और भी प्रिये,पास आओ	68
60.	गणिका	69
61.	रजस्वला	70
62.	इक्कीसवीं सदी की नारी	71
63.	कौन हूँ मैं?	72
64.	शौचालय	73
65.	अम्ल-पीड़िता	74
66.	अविवाहिता	75
67.	घर से भागी हुई लड़की	76
68.	हूँ मैं आज की नारी	77
69.	मिथ्यावादिनी	78
70.	वृद्धा की व्यथा	79
71.	बदली बदली सी माँ	80
72.	नदी सी नारी	82
73.	मनिहारिन	83
74.	मजदूरिन	84
75.	सीख पतंग की	85
76.	प्यारा खत	86
77.	आईना	87
78.	सृजनकर्ता	88
79.	मेरी चाहत	89

80.	**मुझे नारी ही रहने दो**	90
81.	**वात्सल्य**	91
82.	**ऐसा नहीं है कि..**	92
83.	**नहीं भूली है औरत होना**	93
84.	**आँखों में आँसू और नहीं**	94
85.	**बदल रही हूँ मैं**	95
86.	**उठो ललनाओं**	96

स्त्री

त्याग और प्रेम की मिट्टी से गढ़ी
ममता और करुणा में लिपटी
निःस्वार्थ भावनाओं से भरी
संपूर्ण सौंदर्य की आकृति है स्त्री..

मन की कोमल मगर शक्तिशाली
चुनौतियों में निडर लेकिन भक्तिवाली
अदम्य साहसी, जीवन जन्म देनेवाली
दानवों पर भारी दुर्गा, काली है स्त्री..

जिसकी आँचल की छाया तले
कई महात्मा, ज्ञानी और वीर पले
कभी क्रूर दानव इन्सानियत से मिले
सौभाग्य, मातृत्व की मूरत है स्त्री..

प्रेमिका, पत्नी और वामांगिनी है
मन के अँधेरे की धवल चाँदनी है
ईश्वर की भी जननी, जीवनदायिनी है
सम्पूर्ण सृष्टि की निर्मात्री है स्त्री..

कण-कण में बसी सूर्यकिरण सी
विश्वास, मर्यादा के निर्मल मिलन सी
शीतल बयार के उन्मुक्त विचरण सी
हर रूप में सृष्टि का जीवन है स्त्री..।

****

स्त्री भ्रूण

गर्भ में आ बैठी हूँ
धरा में पड़ी कोई बीज सी
लिपटी हूँ मां की सांसों से
बंधी हाथ में ताबीज सी..

धड़कन की मिट्टी में पनप रही
साथ अपनी तकदीर लिए
नाक नक्श भी बन रहे हैं
अपनी मां की तस्वीर लिए..

बड़ी अनोखी है यह दुनिया
छुपी हूँ मां की गोद में
उछल-कूद भी करती हूँ
अपनी मस्ती के प्रमोद में..

न जाने बाहर कैसा होगा
आऊँगी जब संसार में
सोचती हूँ तो डर जाती हूँ
क्या हूँगी सबको स्वीकार मैं..?

दादा, पिता और भाई मेरे
मुझको दुनिया में आने देना
हाथ जोड़ विनती करती हूँ
इस सुंदर जहाँ को बढ़ाने देना..

नन्हें नैनों में बड़े हैं सपने
बदल दूँगी मैं यह समाज
कभी ना होगी भ्रूण हत्या
पाएगी हर बेटी परवाज..।

****

प्रसव का सुख

नन्हा सा बीज अंकुरित होकर
जब गर्भ में जीवन लेता है
प्रस्फुटित होती है कई सोच...
आँख, कान, नाक, पैर
जब अपने आकार लेते हैं
बन जाती है एक जीवित तस्वीर...
माँ की साँसो से जुड़ जाती हैं
साँसें उस नन्हीं जिंदगी की
देखती है वह गर्भ की दुनिया...
मातृत्व ममता के रक्त से
सींचने लगती है वह पौध
एक संस्कार जन्म लेता है...
प्रसव में छटपटाती औरत
पीड़ा से पीला पड़ा मुखड़ा
आतुर है रचने को जहान...
एक मीठा सा सुख है दर्द में
मुस्कुराहट सी है पीड़ा में भी
अतुल आनंद है सृजन का...
हर औरत को पता है दुनिया में
प्रसव का अनोखा अनंतहीन सुख
हर दर्द भूल जाती है वह, जब
उसे जिंदगी पुकारती है- **"माँ"...।**

****

लाडली गुड़िया

ठुमक ठुमक घर के द्वारे पर
जगमग चलती मेरी गुड़िया
बाँध पाजेब नन्हें पैरों में
छुन-छुन करती हँसती चिड़िया..

प्यारे मोहक मुख के अंदर
दो श्वेत मोती जैसे दांत
खिलखिलाती, इठलाती जब वह
मिलती कोई स्वर्गिक सौगात..

गोद में लेकर अपनी गुड़िया
बन जाती वह नन्हीं माँ
चूमती उसे, खेलती, खिलाती
गुड़िया में उसकी बसती जाँ..

तुतली शहद सी मीठी बोली
भोली सी उसकी फरियाद
जल्दी से मुझे बड़ा बना दो
हाथ में लेना है यह चांद..

बड़ी बने तू नभ को छू ले
मिले ऐसी आशीष की लड़ियाँ
कितनी ही बड़ी और सफल बने तू
बच्ची ही रहना तू लाडली गुड़िया...।

****

गुड़िया के प्रश्न

क्या जवाब दूँ, क्या कहूँ?
प्रश्न कई हैं गुड़िया के
बोल सकती हूँ,... तो मौन क्यों रहूँ?
हाड़-मांस हैं,... पर मेरे पंख कहाँ हैं?
चलती-फिरती हूँ,... मगर उड़ती क्यों नहीं?
फैला है आकाश,... तो बँधी सी मैं क्यों?
खाना पकाती है आग,... पर जलती हूँ मैं, क्यों?

दो वर्ष की गुड़िया,
कैसे मिटाती है हवस?
दो महीने की नन्हीं परी में,
क्या देखता है पुरुष?
पशु इंसान नहीं बन सकते,
इन्सान क्यों जानवर बने?
विधाता ने सबको बनाया,... फिर ये भेद क्यों?
जननी हूँ मैं,... तो गर्भ में मुझे मारते क्यों हैं?"

निरुत्तर हैं ईश्वर भी,
चुप बैठे हैं खामोश..
झकझोर रहे हैं अब
जन्मदाता, विधाता को भी
गुड़िया के मासूम प्रश्न..।

****

बचपन

बचपन के नखरे और माँ का दुलराना..
दूध की कटोरी में चाँद को बुलाना..
करता है मन को फिर बच्चा सखी..
वो बचपन था कितना अच्छा सखी..।

हाथ-मुँह अम्मा की आँचल से पोंछना..
बड़े होकर तारों से खेलने की सोचना..
भोला था सपना कैसा कच्चा सखी..
वो बचपन था कितना अच्छा सखी..।

माँ की कहानियों में जादू का होना..
नन्हीं परी के संग राजकुमार सलोना..
लगता था सब कितना सच्चा सखी..
वो बचपन था कितना अच्छा सखी..।

बातों-बातों में सारा भोजन खिलाना..
चंदा को हम सबका मामा बताना..
कितना देती थी माँ भोला गच्चा सखी..
वो बचपन था कितना अच्छा सखी..।

****

कुछ बोलती है... बेटी

रोती है, सोचती है और पूछती है बेटी,
मेरा कसूर क्या है? ये पूछती है बेटी..

नैनों में ख्वाब भरकर, सोई थी माँ के अंदर..
मुझे मारने की खातिर, लाया गया क्यों डॉक्टर..
आने दो मुझको जग में, जोड़ूँ अपने दोनों कर..
क्या इतनी बोझ हूँ मैं? ये पूछती है बेटी,.. रोती है....

कोख से निकल कर, आँगन में आती बेटी..
हँसती, जरा ठुमकती, सबको लुभाती बेटी..
तू भी तो मुस्कुराता, जब खिलखिलाती बेटी..
क्यों हमको मार डाला? ये पूछती है बेटी... रोती है....

मर्दानगी का दंभ था, तो सरहद पर जाते..
मादरे-वतन का, कोई फर्ज तो निभाते..
दुश्मन को मारने का, कोई जोश तो दिखाते..
क्यों हम पे आजमाया? ये पूछती है बेटी... रोती है....

आयी कभी मुसीबत, क्या हमने साथ छोड़ा?
जाकर पराये घर में, परिवार को है जोड़ा..
क्या 'उफ' कहा कभी भी, इतना तो दिल को तोड़ा..
क्यों भजते बेटा फिर भी? ये पूछती है बेटी... रोती है....

घर-बार है हमीं से, संसार है हमीं से..
जीवन का जन्म हमसे, संस्कार भी हमीं से..
जितनी भी रौनकें हैं, त्योहार सब हमीं से..
क्यों देते मौत हमको? ये पूछती है बेटी... रोती है...

****

बेटियाँ

धड़कती रहती हैं दिलों में
माँ-बाप के जीवनपर्यन्त,
हमारी बेटियाँ हमारे लिए
कभी भी पराई नहीं होतीं...।

घर के कोने-कोने में बसी
होती है प्यारी खुशबू उनकी,
शादी हो जाये तब भी घर से
उनकी विदाई नहीं होती..।

दुनिया की एक रीति निभा
देते हैं बस परिवार वाले,
पिया से मिलन की घड़ी
उनकी जुदाई नहीं होती..।

बन जाता है बेटियों का
दोगुना परिवार विवाह से,
कैसे चलता संसार अगर वे
दूसरे घरों से आई नहीं होतीं..?

****

चाँदनी मैं आँगन की

फलक से उतर कर
घर के आंगन में बिखर जाती हूँ
चंदा की चांदनी हूँ
धवल शीतलता सी निखर जाती हूँ..

बसंती उन्माद बनकर
हर दिल में प्यार बनकर धड़कती हूँ
मंद शीतल बयार के संग
हर तरफ खुशबू बनकर महकती हूँ..

कमल सी है फितरत मेरी
हर दलदल से ऊपर उठकर खिलती हूँ
गुलाब सा वजूद है मेरा
काँटो के बीच रहकर भी हँसती रहती हूँ..

नदी की धार की तरह
चढ़ती-उतरती, रास्ता बनाती आगे बढ़ती हूँ
प्यार की बेल हूँ
गमलों के बंधन में बँधकर भी ऊपर चढ़ती हूँ..

अबला न समझो मुझे
शक्ति बनकर दुष्टों का संहार करती हूँ
मैं मशाल हूँ समाज का
प्रगति के लिए धरा का स्वरूप बदलती हूँ..

हिम्मत जबरदस्त हूँ
लक्ष्मीबाई की तलवार बन खनकती हूँ
हौसला है उड़ान का
हर बंधन से आजाद होकर चमकती हूँ..।

****

कोमलांगिनी

खिले कमल सा यौवन तेरा
मृदुल पत्तों सी तरुणाई
रंगीनियाँ बिखरें फिज़ा में
जब-जब ले तू अंगड़ाई..

पेशानी को चूम रहे हैं
काली अलका के घूंघर
उमड़ रहे दो कमलनयनों में
प्रेम के गहरे सागर..

लब हैं पंकज-पंखुड़ियों से
हँसी है सूरज की किरणें
लफ्ज़-लफ्ज़ जब निकलें लब से
लगें पुष्प-पराग झरने..

दामन में है प्रेम चांदनी
हृदय की शोभा ममता है
बाकी सब तो नश्वर है
शाश्वत मन की सुंदरता है..

जलज, अंबुज सी सुकोमल
कुशल तूलिका की कला है तू
नवल शक्ति भरने वाली
कोमलांगिनी सी सबला है तू..

****

चपला

काली घटनाओं के बीच,
किसी आशा की तरह चमकती हो..
ऐ चंचला,
अंधकार भरे जग में,
उम्मीद की रोशनी बन दमकती हो..

हवायें जब ललकारती हैं,
घटा की प्रेयसी बन गरजती हो..
ऐ चपला,
प्रेमी बादल के उर में,
तुम धड़कन बनकर बसती हो..

प्रकृति पर जब आघात हो,
तुम अपना रौद्र रूप दर्शाती हो..
ऐ दामिनी,
कुदरत का घाव भरने हेतु,
तुम दुष्टों का दामन जलाती हो..

बच्चा बनकर मानव के संग,
लुक-छिपकर तुम प्रेम जताती हो..
ऐ सौदामिनी,
जब तक तुमको देखें, समझें,
नभ में जाने कहाँ छुप जाती हो..

****

बेटी की सीख माँ को

बहुत त्याग कर लिया तुमने
कुछ तो अपने लिए करो
बेटी कहने लगी है माँ से
कुछ तो अपना ध्यान धरो..

रात-रात भर जाग-जाग कर
पढ़ाया मुझे, उड़ना सिखाया
बच्चे, परिवार में होम हुई तुम
अपने मन को कितना दबाया..

सारे शौक पूरे करो अब
जी लो अपने सारे सपने
अब मैं बनूँगी माँ तुम्हारी
सिखाऊँगी तुम्हें सजने-सँवरने..

जाओ होटल, देखो सिनेमा
मॉल में जाकर करो खरीदारी
लेकर अपने संगी-साथियों को
मौज करो, मत बनो 'बेचारी'..

तुम्हारी बेटी नहीं, सहेली हूँ अब
हर बात कहो, बन जाओ मीत
एक दूजे का हौसला, साहस हम
सबसे प्यारी है अपनी प्रीत...

****

अमिया

अमिया हूँ,
छुटपन से ही नजर आ जाती हूँ
मौका ढूँढ़ते हैं सब तोड़ने के मुझे
अक्सर कच्ची ही तोड़ दी जाती हूँ
अनदेखा तूफान, मनचलों की मस्ती
लालची जिह्वा असमय अलग कर देते हैं
मुझे शाखाओं से, मेरे परिवार से
काटकर, मसालों से श्रृंगार कर
बंद कर दी जाती हूँ, मर्तबानों मे़
लोगों के स्वाद की चीज बना दी जाती हूँ
स्वार्थी, लालची व्यापारी
जबरन भरते हैं मुझमें
रस, मांस, जवानी, और फिर मैं
भेज दी जाती हूँ, लोगों का स्वाद बनने
बेदर्दी से आवरण उतारते हैं सभी
चूस-चूसकर सत्व मेरा
फेंक दी जाती हूँ कचरे में,
रसहीन, संवेदनहीन गुठली बनाकर..
तब भी मैं निराश नहीं होती हूँ
इंतजार करती हूँ वर्षा का,
बादलों के प्रेम से
फिर अंकुरित होती हूँ, पनपती हूँ
वृक्ष बनकर फिर छाँव, फल देने लगती हूँ
मैं अमिया, स्त्री हूँ,
जीवन देना धर्म है मेरा और
सृजन ही मेरी फितरत है..।

****

चिड़िया

घर के आँगन में
चहकती हूँ चिड़ियों की तरह
गुलजार है हमीं से जहाँ
ईंट-पत्थरों में जान डालती हूँ
घोंसला बनाना, चूजों की सेवा
कर्तव्य है मेरा, करती भी हूँ
पर स्वच्छंद उड़ान मेरी
स्वीकार नहीं है तुम्हें
पंख कतर देते हो ताकि
घिसटता रहे मेरा वजूद
बँधी रहूँ तुम्हारी इच्छाओं से
क्या यही है पौरुष तुम्हारा?
प्रेम के दाने फेंक कर
जाल में फँसा लेते हो
पँख कतरने को?
क्या तुम्हारा प्रेम छलना नहीं।

****

विद्रोहिणी

विद्रोहिणी हूँ क्योंकि
घर की चौखट पार कर
निकल आयी हूँ और
हर क्षेत्र में जीत का
परचम लहरा रही हूँ...
विद्रोहिणी हूँ क्योंकि
समाज की दकियानूसी
छोटी उस सोच की कि
'औरत बस घर का श्रृंगार है'
बाहर की दुनिया में
दे रही हूँ सबको चुनौती...
विद्रोहिणी हूँ क्योंकि
अनपढ़, अज्ञानी रहना
स्वीकार नहीं है मुझे
अर्जित कर हर ज्ञान
अंतरिक्ष की सैर पर
मजबूत और सकारात्मक
कदम बढ़ा रही हूँ मैं...
विद्रोहिणी हूँ क्योंकि
पुरुषों के बनाये साँचे
तोड़कर अपना भविष्य
खुद गढ़ रही हूँ, घर की
अब 'कर्ता' बन रही हूँ मैं...
हाँ मैं विद्रोहिणी हूँ क्योंकि
अब अपना हक माँग रही हूँ...।

****

दामिनी अभी जिंदा है

समा गई है दामिनी हर नारी में
यदि मृत होती तो दुनिया जिंदा कैसे होती?
अहसास, जो धड़का था कभी दामिनी बनकर
धड़कता है हर औरत के दिल में
"स्वाभिमानिनी" बनकर
कलयुग के दुःशासन जब भी चीर को हाथ लगाएंगे
औरत की जागृति की धार से अब चीर दिए जाएँगे
इंतजार नहीं करेगी द्रौपदी
अब किसी राम और कृष्ण का
सक्षम है हर दामिनी अब, दुर्व्यवहार नहीं सहेगी
कोई भी कामिनी, किसी दुःशासन से नहीं डरेगी
ओ,कलियुग के दु:शासन, संभल जाओ अब
हर मोड़ पर खड़ी है औरत काली और दुर्गा के रूप में
छोड़ दो दंभ, अहंकार अपना
प्रेम करो, आदर दो नारीत्व को
वरना अंत हो जाएगा सृष्टि का,
बिखर जाएगी सभ्यता, संस्कृति
प्रकाशहीन हो जाएगी धरा क्योंकि दामिनी मरी नहीं,
हर औरत में जिंदा है बनकर प्रतिकार...

****

अस्मिता

निःशब्द हूँ...
नन्हीं कलियों की पीड़ादायी बेबसी देखकर
आहत है मन...
समाज में नैतिक मूल्यों की ऐसी खुदकुशी देखकर
क्रोधित हैं जज्बात...
मर्दानगी दिखाने के नाम पर कुछ ऐसे वहशी देखकर
हैरत में है इन्सानियत...
स्वार्थ और दौलत में डूबे समाज की मदहोशी देखकर

नारी अस्मिता जब भी तार-तार होती है
टूटती है प्रकृति जार-जार रोती है..
सीता, द्रौपदी, निर्भया, आसिफा अब तक जारी है खेल
आग प्रताड़ना की नारी ही क्यों बार-बार ढोती है..?
ये कैंडिल मार्च, झूठे वादे, खोखले ढाढ़स
पर सियासत है मौन..
अगर हो सैंडिल मार्च और पक्के इरादे तो
हमसे बचेगा कौन...?
दुर्गा हैं, काली हैं, हैं हम झांसी की रानी
उखाड़ फेंकेंगे गरूर समाज का
हम पाशविकता को कर देंगे गौण...
खामोश हैं, कमजोर नहीं हम
चीखेगी कलम, करेंगे शोर नहीं हम
जैसे भी हो पशु-नर में अक्ल डालेंगे..
कुकृत्यों को समाप्त कर,
अपना समाज हम बदल डालेंगे..!

****

कुछ तो करें..

हर बार शर्मसार हो जाती है
इंसानियत...
जोर से ठहाका लगा रही है
हैवानियत...
किसी नेता के पास सुनने का
समय है क्या..?
जनता के प्रतिनिधि का कोई
कर्तव्य है क्या..?
बह रहे हैं आँसू बहनों के
सशंकित सा मन है...
माँ होकर भी क्यों दुश्मन बना
यह नारी तन है..?
क्यों कानून विफल होता है
इस अपराध के आगे..
लोगों को क्यों जकड़े हुए हैं
घटिया सोच के धागे...
लोग नैतिकता अपनायें, लड़ें
हमेशा सत्य के लिए...
जरूरी है कड़े कानून बनें ऐसे
तुच्छ कृत्य के लिए...
सरकार ही नहीं बच्चों को भी
नीति सिखायें आज...
बेटी बचाना-पढ़ाना तभी संभव
जब सुरक्षित होगा समाज...!

****

परिणीता

ब्याही बेटी अपने मायके
बस मेहमान बनकर आती है
ससुराल की जिम्मेदारी, पति का प्रेम
बच्चों की ममता, ननद-देवर की चिंता
सब साथ लेकर आती हैं
अपने ही माता-पिता, भाई-भाभी
सब अनजान से लगते हैं उसे
जिनके आगे मचलती थी,
रूठती थी, झगड़ती थी
अब उनसे कुछ कहने से पहले
बार-बार सोचती है, संकोच करती है
ब्याह होते ही बदल जाता है
बेटियों का घर-संसार
माँग का सिंदूर भर देता है
जिम्मेदारियाँ परिणीता के आँचल में
बचपन की सहेलियाँ, खिलौने, गुड़िया
सब ले लेते हैं रूप गृहस्थी का
ममता का, त्याग का, सेवा का
लग जाती है बेटी घर सजाने में
ससुराल को अपना घर बनाने में
बन जाती है प्रेम और इज्ज़त का सेतु
दो भिन्न परिवारों के बीच
उम्र भर संवारती है दोनों घरों को
इस प्रश्न के साथ कि
उसका अपना घर कौन सा है?

****

बेटी बनी बहू

चिड़िया जैसी फुदकती, चहकती थी कभी
न जाने अब क्यों शांत हो गई?
जब से किसी घर की बनी है बहू
नन्ही बेटी दायित्व का नाम हो गई
तुनक मिजाज थी, लेती थी पंगे सबसे
जल्दीबाजी में करती थी हर काम
अब सोच समझकर फैसले लेती है
कुछ करने से पहले आँकती है अंजाम
बेपरवाह सी थी, तोड़फोड़ करती थी
रसोई का धुआं रास नहीं था उसे,
घर में कलछी भी नहीं चलाती थी
अब समझदार हो गई है वह तो
रखती है खुद को सलीके से, सबके लिए
बड़े प्यार से खाना भी वही पकाती है
दिन भर बक बक करती रहती थी
जिम्मेदारी उठाने से कितना डरती थी
अपनी माँ का स्वरूप बनकर अब
ससुराल के सारे कर्तव्य निभाती है
शायद गुपचुप सीखती रही मुझसे
अल्हड़पन सा था बस माँ के आगे
अपने अंदर छुपाये हुए माँ की परछाई
मन ही मन बुनती रही संस्कार के धागे
पलकें झुकाकर न जाने क्या छुपाती है मुझसे,
कुछ पूछूँ तो हँस देती है, कुछ नहीं कहती है
बेटी जबसे ससुराल में बहू बनकर गयी है
अब मुझे कुछ बदली बदली सी लगती है...!

****

माँ की नसीहत- बेटी की विदाई

पुराना जमाना--
भोर तड़के उठना
सबके बाद ही सोना
सबकी सेवा करना
प्यार के बीज बोना
सास-ससुर हैं मात-पिता
पति परमेश्वर समझना
देवर की बलैया लेना
ननद को बहन सा रखना
कोई कुछ कहे तो धरती बनना
कर्तव्य करना, कभी न रोना
मेरी बेटी, औरतों के लिए
अच्छा नहीं है दाँत का होना..

नया जमाना--
बेटी, तू परायी नहीं है
न केवल ससुराल तेरा घर
चुपचाप न सहना अन्याय
साथ चलना, बन सच्चा हमसफर
बेटी, तू कतई बोझ नहीं
तेरा बेटे जैसा अधिकार
मान-मर्यादा सब निभाना
अपमान न हो स्वीकार
सच का हरदम साथ देना
भले चाहे दुनिया रूठे
सबका सम्मान करना लेकिन
कभी "आत्मसम्मान" न छूटे..

बदल रहा है जमाना, बदल रही हैं नसीहतें
जरूरी है हर बेटी के लिए, जमाने के साथ कुछ सीखें..।

****

रसोई में स्त्री

रसोई की धड़कन है स्त्री
हर व्यंजन की कविता है,
भावों की हरी-भरी सब्जियाँ
मिर्च, मसालों भरा तड़का है...

आलू, टमाटर, धनिया जैसे
हर जगह समा जाती है,
नमक की तरह स्वाद बनकर
जिंदगी में घुल जाती है...

खट्टे-मीठे अनुभवों का
अचार बनाकर रखती है,
जीवन जब भी बेस्वाद सा लगे
थोड़ा चटपटा सा चखती है...

गृहस्थी की धारदार मिक्सी में
चटनी सी पिस जाती है,
निर्मल पानी जैसे प्रेम से
आटे जैसी बँध जाती है...

चूल्हे की चिमनी सी वह
हर गर्मी, धुआँ सोख लेती है,
काजू, किशमिश की ताकत बनकर
अवांछनीय, अनहोनी रोक लेती है...

प्यार, ममता, त्याग, मातृत्व
नित चलती रहती है चक्की,
स्त्री से ही तो है रसोई
रसोई के हर कण में स्त्री...!

****

औरतों की होली

औरतें हर दिन मनातीं हैं रंगों का त्योहार..
सुबह तड़के उठकर आसमान के गुलाबी रंग से
खुद को सराबोर कर अपना श्रृंगार करती हैं
अपनी मुस्कान के रंग से घर की कालिमा को
बदल देती हैं चटकीले खुशनुमा रंगों में..
रसोई के इंद्रधनुषी प्रांगण में नित खेलती हैं रंगों से
हल्दी के पीले रंग से घर में शुभता भर देती हैं
पालक, धनिया और पुदीने के हरे रंग से वे रखती हैं
घर-संसार को हरा-भरा, मधुर फगुआ के बोल और
मिर्च के लाल रंग से जब वह लगाती है तड़का
तब चहक उठता है, घर का कोना-कोना..
घर का कोई सदस्य जब होता है लाल-पीला
नीले रंग के जल की शीतलता की तरह हँसकर
क्रोधाग्नि शांत कर देती हैं.. नम्रता के रंग से करती हैं
अतिथियों का सत्कार.. लुटाती रहती हैं दिन-रात
प्रेम, ममता और करुणा के विभिन्न मीठे रंग..
श्वेत रंग की तरह खुद को बेरंग और
शांत रखकर भी
सम्पूर्ण गृहस्थी को बना देती हैं,
इंद्रधनुषी और सतरंगी..
सचमुच, रंग होली के हों या खुशी, प्रेम और धैर्य के
ये औरतें हर पल खेलती हैं रंगों से...!

****

करवा-चौथ का चाँद

इतराता है चाँद जब
खुशियों की छलनी से
चाँद में देखती है हर गोरी
चेहरा अपने महबूब का..
मेहंदी रचे और कंगन सजे
हाथों में लेकर करवा
मांगती है दुआएँ अपने
सुहाग की लंबी उम्र की..
पलकों से लिखती है
चाँद पर कहानी प्रेम की
रेशमी मधुर स्मृतियों की..
सिमट आता है कत्थई सी
आँखों में सौंदर्य चाँद का
पिघलने लगती है चांदनी
और खिल जाता है दिल में
धवल मुस्कुराता चाँद
बिल्कुल बेदाग होकर..!

****

हमसफर हैं हम..

जिंदगी के सफर में
ऊबड़-खाबड़ रास्तों पर
साथ चलते-चलते
जब बढ़ने लगें फासले
बढ़ जाओ तुम आगे
और मैं पीछे पड़ने लगूँ
तो रुक कर इंतजार कर लेना
वादा है हमारा साथ चलने का
हमसफर हैं हम...

करियर, शौक, जरूरतें
जब महत्वाकांक्षाएँ बढ़ायें
कुछ पाने की होड़ हो
और तुच्छ 'अहं' टकरायें
जब "मैं" हावी होने लगे
और प्रेम पीछे छूटने लगे
तब दोनों थोड़ा ठहरें
एक दूजे को याद दिलाएं-
हमसफर हैं हम...

जीवन के वीरानों में
जब बच्चे बड़े होकर
अपनी जिंदगी जीने लगें
सफर की रफ्तार धीमी पड़े
और शरीर हमारे थकने लगें
छोटे से कमरे में सुकून से
आमने-सामने बैठकर
जिंदगी को हम बता दें
हमसफर हैं हम...!

****

हाथों में हाथ

हर जनम मुझे तेरा साथ मिले
तेरे हाथों में ही मेरा हाथ रहे
विश्वास की डोर से बंधे रहें हम
बस आंखें ही आंखों से बातें करें..

तेरे मेरे हाथों की उभरी लकीरें
रच देंगी न जाने कई तकदीरें
गढ़ देंगे हम दुनिया नयी प्रेम से
तोड़ देंगे रूढ़ियों की कई जंजीरें..

सुरक्षा की छुअन, नए उमंग औ' अहसास
साथ निभाने के सात वचनों का विश्वास
दो अनजान शख्सों का एक हो जाना
भर देता है दिल में इक प्यार भरी प्यास..

तेरे हाथों में हाथ है तो सफर है आसान
तेरे कदम हैं साथ तो हर पग नया जहान
तेरी ही धड़कनों से धड़कती है सांसें
तेरी मंजिल हूँ मैं, है तू ही मेरा मुकाम..

नया हर दिन है अब नयी हर रात
दूरियों में भी धड़कनें करती हैं मुलाकात
बदल गए हैं आपस में हमारे वजूद
जबसे हमने थामा है एक दूजे का हाथ..!

****

गोरी के गेसू

काले से गेसू बिखरे हैं जो शाने पर
कोई बिजली सी गिरी है सारे जमाने पर..

लहराने लगीं जुल्फें रह रहकर नागिन सी
टिकने लगीं निगाहें इस रूप के खजाने पर..

गिर रहीं नशीली बूँदें केश के झटकते ही
लोग जा ही नहीं रहे हैं अब शराबखाने पर..

जुल्फों की जंजीरें उलझा रही हैं दुनिया
क्या कहूँ क्या गुजर रही अब हर दीवाने पर..

जादूगरी दिखा रहे 'प्रिया' गेसू अब गोरी के
सिमटी है 'हया' पलकों के शामियाने पर..

****

तुम से... तुम तक

ऐ मेरे आराध्य...!
जिंदगी के सूने कैनवास पर
हमारे मिलन के रंगीन चित्र
अंकित होने लगे हैं
जैसे सूर्य की किरणों से नहाकर
खुशियों से सजकर मन
पुलकित होने लगे हैं
ख्वाबों के कमल
हृदय के तालाब पर तैर रहे हैं...
वो सभी अब अपने से लगते हैं
जो सदियों तक मुझसे गैर रहे हैं
तेरा मन में उतरना,
मुझे जीवन देने लगा है
और मैं अब निकल पड़ी हूँ
तुम्हारा भरोसा लिए
जिंदगी की यात्रा पर
एक नया आयाम लिए
कि हर जीव में तुम हो, और
हर तरफ है तुम्हारा ही प्रकाश
मंजिल भी तुम, राही भी तुम
और ये यात्रा है...
तुम्हीं से शुरू होकर तुम तक...।

****

कितने अजीब हैं हम..!

बड़े चाव से रसोई में हम
आटे की लोई से रोटी बेल कर
सपनों को आकार देते हैं..
हरी, लाल सब्जियों में तड़का लगाकर,
प्रेम की खुशबू से घर सँवार लेते हैं..
पर, भूल जाते हैं हम हमेशा खुद को ही
आकार देना, संवारना
कितने अजीब हैं न हम..?

पाई-पाई जोड़-जोड़ कर
दिन-रात एक कर के
सबकी पूरी करते हैं जरूरतें..
नींदों में भी हमारी आँखों में
परिवार की खुशियों की ही
भरी रहती है सैकड़ों हसरतें..
फिल्म देखने की छोटी इच्छा भी अपनी
चुपचाप दफन कर लेते हैं
कितने अजीब हैं न हम..?

हल्का सा दर्द भी हो किसी को तो
नजर उतार कर
बुरी बलाएँ खुद पर ले लेते हैं..
चाहे छोटी सी ही मुसीबत हो या
आँच भी आए

तो सबसे आगे खड़े होते हैं..
पर, जरा अपनी मर्जी से जीना चाहें तो
उतर जाते हैं हर दिल से हम
कितने अजीब हैं न हम..

अलग-अलग जज्बातों वाले
सारे रिश्ते-परिवार को हम
बांधकर रखते हैं प्रेम की डोर से..
मायका या ससुराल
हर जिम्मेदारी की पोटली को
बांधे रखते हैं पल्लू की छोर से..
जरा भी चूके तो ताने सुनते हैं
चुपचाप छुपाते हैं अपनी तकलीफें
सचमुच कितने अजीब हैं हम..

****

माँ

माँ पुकारते ही
चाँदनी उतर आती है जीवन प्रांगण में
शीतल, पावन, प्यारे अल्हड़ से बचपन का
मधुर अहसास हो तुम
माँ, सिर्फ जननी नहीं, ईश्वर सा विश्वास हो तुम..

जीवन में जब अँधेरे ढलते हैं
वक्त के काले बादल
खुशियों का सूरज निगलते हैं
थकता है मन, बोझ लगता है जीवन
ऐसे में आशाओं का स्तम्भ हो तुम
माँ, सिर्फ जननी नहीं हो, ईश्वर का प्रतिबिंब हो तुम..

बाधाएँ जब मार्ग अवरुद्ध कर दें
लोग गलत समझें सही व्यवहार को
परिस्तिथियाँ सबको हमारे विरूद्ध कर दें
ऐसे में, तूफानों से लड़ने का संस्कार हो,
आत्मा की गहराई से उठती 'शिव' की पुकार हो तुम
माँ, सिर्फ जननी नहीं हो, ईश्वर का अवतार हो तुम..

उम्र की संध्या में जब काया थकने लगे
हिम्मत जवाब दे, आँखें पथरा जायें
और सिर के बाल पकने लगें
ऐसे में, बचपन के हौसले की उड़ान हो
खनकती हँसी, अल्हड़पन का प्रमाण हो तुम
माँ, सिर्फ जननी नहीं हो, आत्मा का पुनर्निर्माण हो तुम..!

****

माँ का पद..

जीवन के उतार-चढ़ाव भरे रास्तों में
एक पद ऐसा भी है इस संसार में
जिसकी प्रतिष्ठा की खातिर वो ईश्वर भी
अत्यंत आतुर हैं और नम्र हैं व्यवहार में...

एक पद, जो जननी का, मां का है
एक ओहदा, जो इन्सान जनता है
एक प्रतिष्ठा, जो भावना से, रूह से जुड़ा है
एक अतुलनीय सम्मान, जो सृजन करता है...

मां का ओहदा है संसार में सबसे बड़ा
यह ईश्वर-तुल्य है और आदरणीय है
कर्तव्यों से भरा है जीवन हर मां का
यह अत्यंत प्रेरणादायक है, अनुकरणीय है...

दुनिया का हर पद अपने नशे में मस्त है
हर पद में अधिकार है, अहंकार है
मां का ओहदा तो विनम्रता की मिसाल है
मां के पद में बस त्याग है, अत्यधिक प्यार है...

हम सब का है यह परम उत्तरदायित्व
मां का सम्मान करें, और ध्यान रखें
इस पद से जुड़ी है ईश्वर की परम प्रतिष्ठा
इस पद की गरिमा बढ़ायें, उनका मान रखें...।

****

माँ का आँचल

प्यार का सागर है... माँ का आँचल
सुखों की चादर है... माँ का आँचल
खुले आकाश में बालक की सूनी आँखों की
उम्मीदों भरी सागर है... माँ का आँचल..

माँ -जो ईश्वरीय वरदान है
हर बच्चे के साथ मानो स्वयं भगवान है
संघर्ष में प्रेरणा और सुखों का आधार है
माँ ही वह कारण है जिससे यह सृष्टि साकार है..

दया,क्षमा और त्याग का रूप है माँ
हर घर में ईश्वर का सच्चा स्वरूप है माँ
चाहे न भी करें हम पूजा, तप और हवन
फिर भी फल मिलेगा यदि हम माँ को करें नमन..

आशा, प्यार, विश्वास है- माँ का आँचल
नाउम्मीदों में इक आस है- माँ का आँचल
बुलंदियों को छूती हौसलों भरी उड़ान है
मन का नर्म अहसास है- माँ का आँचल।

****

गृहिणी

जंग शुरू होती है सुबह के चार बजे,
सूरज उठे, या दुनिया के लिए रात हो..
कमर कस लेता है योद्धा,
अपनों की खातिर,
जाड़ा हो, गर्मी हो या कि बरसात हो..
रसोई में छुरी से,
बिगड़े वक्त में धीरज से,
सबके नखरों को दुलार से
और तानों को मुस्कान से..
जीत लेता है योद्धा हर मन अपने हुनर से और
लड़ जाता है अपनों के लिए किसी भी भगवान से..
नजर रहती है उसकी हर तरफ पैनी सी,
अपने छोटे से साम्राज्य का
कोई सा भी कोना हो..
रचता रहता है वह हर पल कुछ अच्छा,
अंदर की सजावट हो या
बगीचे में कुछ बोना हो..
वो अथक लगा रहता है
अपने राज्य की तिमारदारी में,
हर वक्त डटा रहता है योद्घा कर्तव्य में,
स्वास्थ्य हो या हो बीमारी में..
खुद भूखा रहकर भी पेट भरता है
घर आये मेहमानों का,
अपनों की तो बात ही क्या,
वो ध्यान रखे अनजानों का..
बेफिक्र रहते हैं घर के सभी सदस्य
योद्घा की वजह से ही तो बना रहता है
घर में अद्भुत सामंजस्य..
हर पल चौकन्ना रहता है योद्धा
जैसे जंगल में हिरणी
वह योद्धा और कोई नहीं
है हर घर की गृहिणी..!

****

जीने की कला

गृहस्थी को साड़ी के
पल्लू में बांधकर,
रिश्तो के उतार-चढ़ाव से
मन को साधकर,
दिन-रात की छोटी-छोटी खुशियों से
प्रेम की चुस्कियां ले लेती हूँ,
इस तरह मैं जीवन जी लेती हूँ..

हँसी-ठिठोली से
थकन उतार कर
प्राकृतिक सौगातों से
खुद को संवार कर
दोस्तों के लबों पर मुस्कान के श्रृंगार से
खुद में हरियाली बिखेर लेती हूँ
इस तरह मैं जीवन जी लेती हूँ...

उधड़े जज्बातों को
लफ्जों से सीकर
लोगों की कड़वाहट को
दवा जैसे पीकर
मुश्किल हो जाए जब लड़ना हालात से
दामन से काँटे झटक देती हूँ
इस तरह मैं जीवन जी लेती हूँ..

बंद आंखों में जब
सपने निहारते हैं
जरूरतों के मेले
जब मुझे पुकारते हैं
जब पैर बढ़ने लगें और चादर हो छोटी
ख्वाहिशों पर अपने मैं ताले जड़ती हूँ
इस तरह मैं जीवन जी लेती हूँ...।

****

नारी, तुम श्रद्धा हो

कोमलांगिनी हो, सौभाग्यिनी हो
अर्धांगिनी हो, तुम लज्जा हो,
हर घर की परम पूजनीया
ऐ नारी, तुम तो श्रद्धा हो...

विश्वास, भरोसा, जीवन, चेतना
त्याग, करूणा और ममता हो,
आँचल में समेटे दूध की धारा
प्राणदायिनी, तुम श्रद्धा हो..

मानवता की शान तुम्हीं से
तुम संस्कारों की सलिला हो,
मीठा सा अहसास हो मन का
प्रिया हो, नारी, तुम श्रद्धा हो...

कोमल मन में अतुलनीय शक्ति
वीरांगना हो, न कि अबला हो,
लक्ष्मी, सरस्वती, दुर्गा, काली
नौ रूपों में कांता, तुम श्रद्धा हो...

ईश्वर भी जिस गोद को तरसे
कान्हा की ऐसी तुम 'मइया' हो,
हर जीवन का आरंभ तुम्हीं से
इस विश्व में नारी, तुम श्रद्धा हो...!

****

नारी और धरा

धरती और नारी- दोनों
के बीच समानता अजीब है
देते रहना ही धरा की फितरत है
देते रहना ही नारी का नसीब है..
धरा ही देती है जन्म
हर मीठी-कड़वी चीज को
औरत ही है वह शक्ति जो
जनती है मानवता के बीज को..
हर जीव का पालन पोषण
धरती की ही जिम्मेदारी है
नारी ही वह माँ का रूप है
जिसकी वजह से दुनिया सारी है..
सारी पीड़ाएँ सहती है धरा
जब स्वार्थ उन्हें लूटते हैं
दर्द सह कर भी हंसती है नारी
भले बंधनों से उनके दिल टूटते हैं..
रेत, हरियाली, नदी, पहाड़
सभी को साथ ले चलती है धरा
बच्चे, परिवार, ग्रहस्थी, कर्तव्य
नारी कहीं नहीं चूकती है जरा..
धरा का वरदान है नारियों को
त्याग, ममता, सहनशीलता, प्यार
समस्त दुनिया है नारी के दम से
ईश्वर भी आते हैं लेने उनका प्यार..
अपने हाथों में उठा रखा है
नारियों ने ही समस्त धरती को
कर्तव्य है मानवता का भी
पलकों पर रखें अपनी जननी को..!

****

कहाँ है घर...?

बेटी मायके की इज्ज़त
बहू ससुराल की इज्ज़त
मायके का 'पराया धन'
ससुराल में 'पराये घर की'
मायके पर अधिकार नहीं
ससुराल को हक स्वीकार नहीं
मायका- भैया का
ससुराल- पति का
जिम्मेदारी मायके की
दायित्व ससुराल का
निभाना है दोनों घर
उम्मीदें दोनों परिवार की
अपना घर कोई नहीं?
कहाँ है अपना घर?

****

चढ़ती बेल

कई बार काटी गई
तोड़ी गई, नोची गई
जड़ें तक उखाड़ दी गयीं मेरी
आसपास की जमीनें
खोद दी गयीं
एसिड तक डाला गया मुझपर
पर मैं सृजन की बेल हूँ
- जितनी काटोगे, उतनी पनपूँगी
- जितनी रोकोगे, उतनी बढ़ूँगी
- जिधर मोड़ दोगे, उधर ही चढ़ूँगी
- रचती रहूँगी संसार

****

नारी की दुश्मन नारी

दर्पण कुछ अद्भुत दिखा रहा है
नारियों की दुनिया बता रहा है..
कैसी है ये अजीब सी लाचारी
नारी की दुश्मन है खुद नारी?..
सास को चाहिए दहेज ज्यादा
भूल रही है वो 'माँ की मर्यादा'..
ननद भाभी का घर जला रही
मायके में बैठी आग लगा रही..
बहू को अब बस अधिकार चाहिए
न कर्तव्य, न कोई व्यवहार चाहिए..
सास, ननद अब भारी हैं घर में
खुद अर्जन कर भिखारी हैं घर में..
सहेली ही अपनी सहेली को छल रही
लोलुपता देह व्यापार में ढल रही..
सौतन बनने लगीं हैं अब खुद बहनें
अपनों के फरेब के- वाह क्या कहने..
नौकरानियाँ मालिकों को लुभाने लगी हैं
मालकिन को ही औकात बताने लगी हैं..
कैसी है फितरत नारी की?
खुद वजह बन रही लाचारी की?
समाज से न्याय कैसे पायेगी?
जब नारी ही नारी को तड़पायेगी?
छल, फरेब, ईर्ष्या आपस की
मिटे तभी एकता मिले वापस भी..
एक होगा जब नारी का जहान
तभी उन्हें मिलेगी आजाद उड़ान..।

****

खुद को जानती हूँ मैं

मैं कैसी हूँ-
ये किसी से पूछने की जरूरत नहीं मुझे
खुद को अच्छी तरह जानती हूँ मैं
अपनी, जरूरतें, अपनी शक्तियाँ
अच्छी तरह से पहचानती हूँ मैं
आईने में देखती हूँ तो
अपनी कमियों पर हँस देती हूँ
फुरसत में बैठती हूँ तो
अपनी गलतियों पर फब्तियाँ कस लेती हूँ
नहीं चाहिए मुझे महल, बँगले, जेवर
खनकती चूड़ियों में ही
सुख ढूँढ़ती हूँ अपना
मँहगी गाड़ियों में
देश-विदेश की सैर नहीं चाहती
बच्चों की किलकारियों से
सजता है मेरा सपना
सेल्फी लेकर नहीं निहारती
गजलों, नगमों में सँवारती हूँ खुद को
पति, बच्चों की हँसी में पाती हूँ खुद को
घर की खुशियों में ढूँढ़ती हूँ अपने वजूद को
मुझे किसी से कुछ नहीं चाहिए
नाम, शौहरत, दौलत- समर्पित है सब कुछ
मेरे घर के आँगन की मिट्टी में...

****

किटी पार्टी

औरतों का घरेलू संगठन
करने चला जब गृहस्थी-मंथन
भूलकर छोटी-बड़ी परेशानियाँ
इकठ्ठी हुई सभी जनानियाँ
द्वार पर सजावट की कड़ियाँ
मँहगे पर्दे, फूलों की लड़ियाँ
चुटकुलों, पहेलियों, हँसी के दौर
गहनों, साड़ियों, सेल पर गौर
भाँति-भाँति के व्यंजन और पेय
सब 'कुशल गृहिणी' की लेती श्रेय
फैशन, दिखावे की लगी थी होड़
हेयर स्टाईलों का नहीं था जोड़
ताश, गेम्स फिर डमशिराज
फिल्मी गानों का हुआ आगाज
कभी बातचीत, कभी टाँग खिंचाई
कुछ तानाकशीं, कुछ झूठी बड़ाई
मस्ती भरा सा मदहोश आलम
झूम रहा सभी औरतों का मन
भूलकर घर की मुश्किलें, चिंताएँ
कुछ पल हम सभी हँसे-हँसायें...।

****

मुझे ऐतराज नहीं

सुनो..
अगर मेरी तमन्नाएँ तोड़कर
अपना घर बना सको
तो, मुझे ऐतराज नहीं..

अगर मुझे बिखेरकर
अपनी जिंदगी सँवार सको
तो, मुझे ऐतराज नहीं..

अगर मेरे सपने जलाकर
खुद को रोशन कर सको
तो, मुझे ऐतराज नहीं..

अगर मुझसे दूर जाकर
अपने करीब आ सको
तो, मुझे ऐतराज नहीं..

मैं खुश हूँ कि तुमने खुद में
मुझको पाया है...
जिंदगी के सफर में तुमने
मुझे अपना बनाया है...
अब जाने की इजाजत माँगकर
मेरा दिल न दुखाओ..
मेरे वजूद में तुम ही तुम हो
अगर मुझे भुलाकर सुख से मुस्कुरा सको
तो, मुझे ऐतराज नहीं...
कतई ऐतराज नहीं
मेरा अस्तित्व, मेरी पहचान हो तुम
मैं कहाँ अलग हूँ तुमसे..?

****

क्या है नारी

करुणा की धार ममता अपार
आंखों में प्यार सुख की बयार
हर आंगन की कोकिल पुकार
नारी तुम हो जीवन आधार

हो शोख,चंचला धरा का हर्ष
सृजन-कर्ता का चरमोत्कर्ष
मां का दुलार पिता का गर्व
तुम्हीं से है धरती का स्वर्ग

मर्यादा, भरोसा, आन बड़ी तुम
सुख दुख में पति संग खड़ी तुम
संतान के हक के लिए लड़ी तुम
सचमुच परिवार के बीच कड़ी तुम

कभी द्रौपदी कभी सीता बनकर
लड़ी हमेशा अकेले ही ठन कर
बन झांसी की रानी तनकर
किया सामना युद्ध भयंकर

किसी ने तुम्हारा मोल न समझा
यही त्रासदी मनु-जीवन का
कभी जली, कभी बनी निर्भया
ऐसी सहनशील कोई और है क्या?

नतमस्तक है मानवता सारी
तुम ही से है दुनिया हमारी
आज अभी हम प्रण लें भारी
उच्च शिखर पर सदा हो नारी

****

हे माँ शारदे, वर दे

हे माँ शारदे, वर दे,
माँ वीणावादिनी वर दे...
मुझ अज्ञानी की वाणी को,
अपने संस्कारों से भरा स्वर दे,
माँ वीणावादिनी वर दे....।

हूँ मिट्टी की काया केवल,
मोह माया में मगन मैं,
पा लूँ तुझको अपने अंदर,
लगाऊँ कैसे ये लगन मैं?
मेरी रूह को अपने उज्जवल
प्रकाश से भर दे...
हे माँ शारदे, वर दे,
माँ वीणावादिनी वर दे...।

अच्छे-बुरे का ज्ञान नहीं माँ,
न इतनी समझ है मुझमें,
बड़ी अनोखी जाल ये दुनिया,
बँधी जग के उलझन में,
मुझ निर्बल, अदना पर माँ,
तू अपनी परम कृपा कर दे..
हे माँ शारदे, वर दे,
माँ वीणावादिनी, वर दे...।

सच-झूठ, तू सब जानती है,
हर न्याय-अन्याय की भाषा,
तेरे हंस के इन्हीं गुणों से,
दुनिया को मिले दिलासा,
अपनी वीणा के मधुर गान से,
जग के दुःख हर ले...
हे माँ शारदे, वर दे,
माँ वीणावादिनी, वर दे..!

****

नवदुर्गा

नौ रूपों में तेरे माँ, ममता की झलक है;
तेरी आभा से रोशन, ये धरा और फलक है;
तू आकर बस जाए, हर दिल में हर घर में;
यही चाह है हम सबकी, तेरे दुलार की ललक है..

नौ रूपों में तेरे माँ, शक्ति भरी पड़ी है;
धरती पर जब-जब भी, दानवी बाधा अड़ी है;
हर रूप में आ-आकर, रक्षक बनी है तू;
अपने बच्चों की खातिर, तू हर समय खड़ी है..

नौ रूपों में तेरे माँ, संदेश विजय का है;
शांति, करुणा, सहनशीलता, हर भाव विनय का है;
नहीं पनप सकती बुराई, कभी भी तेरे आगे;
वाहन भी तेरा अभेद्य है, प्रतीक वो जय का है..

नौ रूपों को तेरे माँ, अपना प्रणाम करती हूँ;
शीश तेरे चरणों में, मैं सुबह शाम धरती हूँ;
आशीष दो हम सबको, अपने दुलार से भर दो;
न्याय-पथ पर चलूँगी, आज यह प्रण करती हूँ..

****

हे छठी मइया

आओ हे सूर्यदेव अंगना में मोरे..
हम सब कुटुंब-जन खड़े हाथ जोड़े..!

गोबर और मिट्टी से लीप घर-दुआरी..
धोयें सूप-नारियल, सजा के अटारी..!

शुद्ध घी में ठेकुआ, नव चावल के लड्डू..
नारियल, अनानस, खीरा और कद्दू..!

करके नहाय-खाय, खीर-रोटी खरना..
साँझ को सूप-अर्घ्य, रात कोसी भरना..!

उगते हुए सूरज को करके नमन..
शुद्ध जल में भीगे तन से करके हवन..!

देकर आशीष करें परवैति पारण..
यही सूर्यदेव ही तो हैं जग का कारण..!

हर पल कृपालु रहें हमपे छठी मइया..
कभी भी न छूटे हमसे छठ के बरतिया..।

****

अराधना

नव प्रभात में नव दुर्गा साधना,
करुँ ह्रदय से माँ, तेरी आराधना;

प्यार, विश्वास का दीप जलाकर,
'अहं'-तेरे चरणों में चढ़ाकर;

करुँ भावों के पुष्प मैं अर्पण,
स्वयं को तुझमें करुँ समर्पण;

अनमोल संस्कारों के वस्त्र चढ़ाऊँ,
तप और प्रार्थना के शस्त्र सजाऊँ;

सब्र और शक्ति है वाहन तेरा,
हौसलों के रूप में आवाहन तेरा;

विजय-कुंकुम का तिलक ललाट पर,
चरण पखारूँ तेरा ह्रदय के घाट पर;

हे माँ दुर्गे.., हे...जगदम्ब -भवानी,
हे सिद्धि दात्री, हे जगत कल्याणी;

कोई भी नारी अब बलि चढ़े ना,
दुराचारियों का अब दम्भ बढ़े ना;

मेरी अखंड पूजा स्वीकार करो माँ,
जीवनदायिनी का अवतार धरो माँ;

खोले बैठी हूँ अपने मन के द्वार,
ममता बरसा दो मुझपर अपरम्पार;

चरितार्थ हमारी भक्ति कर जाओ,
हर नारी की अटूट शक्ति बन आओ;

अब आओ माँ..
माँ...अब आओ...।

****

गंगा-गीत

युगों से बहती जलधारा, कण कण अमृत समेटे.
शिव जिसे अपनी जटा में, रहते सदा लपेटे,
मनुष्य को देवों का, पवित्र वरदान हो तुम,
हे गंगे,..... सिर्फ नदी नहीं हो, मां हो तुम।

स्वर्ग से उतरी धरा पे, जन जन की प्यास बुझाने,
मानव के पाप धोकर, पावन कर मोक्ष दिलाने,
हमारी मोक्षदायिनी हो. पवित्रता का पर्याय हो तुम,
हे गंगे,..... सिर्फ नदी नहीं हो,मां हो तुम ।

तीरों पर बसा है जीवन, तुमसे ही हरियाली,
जल के लाखों जीवों की, तुम्हीं से खुशहाली,
जीवनदायिनी का रूप हो, प्राणों का आधार हो तुम,
हे गंगे,..... सिर्फ नदी नहीं हो,मां हो तुम ।

है मनु सभ्यता तुमसे ही, हम सब पर कर्ज तुम्हारा,
दूषित ना तुम्हें होने दें, ये है फर्ज हमारा,
देश का गौरव हो, मनु इतिहास का साक्ष्य हो तुम,
हे गंगे,..... सिर्फ नदी नहीं हो,मां हो तुम...।

****

झाँसी की रानी

दुर्गा काली की अवतार
थी तलवार में ऐसी धार
अपने देश से उसको प्यार
अजब वीरांगना थी वह नार.. झांसी की रानी

काशी में जन्मी छबीली
घर में थी संतान अकेली
अस्त्रों-शस्त्रों संग थी खेली
बनी गौरव के लिए पहेली.. झांसी की रानी

ब्याही गंगाधर के साथ
झाँसी को मिली गजब सौगात
हाय!सूने हुए जब हाथ
उमड़ पड़ी बनकर बज्रपात.. झांसी की रानी

रानी चंडी बनकर वह आयी
युद्ध-यज्ञ की ज्योत जगायी
पुत्र को पीठ पर बाँधे माई
की दुश्मनों से खूब लड़ाई.. झांसी की रानी

अंग्रेजी सेना की हुई हार
पर घिरी वीरा आ गए अवार
अकेली रानी और वार पर वार
वह सिंहनी गई परलोक सिधार.. झांसी की रानी

याद करते हम भारतवासी
तेरी वीरता भरी है झांसी
तुझसे स्वतंत्रता है अविनाशी
तेरे कारण हर नारी साहसी.. झांसी की रानी!

****

द्रौपदी- चीरहरण

शूरों, वीरों से भरी सभा, थी शांत और स्तब्ध
सब पांडव थे सिर झुकाए, लज्जित और निःशब्द
गुरु, ज्ञानी, महात्मा, वीर, सब बैठे हुए थे साथ
धृतराष्ट्र, पितामह, द्रोणाचार्य, बस मल रहे थे हाथ...

रजस्वला, विवश द्रौपदी, खड़ी थी भरे दरबार में
खींच रहा था चीर दुःशासन, मर्यादा की हद-पार से
अग्नि से जन्मी देह सुकोमल, धधक रही अपमान से
विक्षत सी थी द्रुपद सुता, अपने टूटे स्वाभिमान से

क्षुभित मुख पर प्रश्न कई थे, नैनों से बहता था निर्झर
कालसर्प सी केश राशियाँ, उड़ रही थीं बिखर-बिखर-
"परवाह नहीं की दुनिया की, पांच पति स्वीकार किया
तुम जुए में हारो मुझको, किसने तुम्हें अधिकार दिया?"

"सम्मान सिर्फ तुम वीरों का, क्या मेरा कोई मान नहीं?
कभी बाँटा, दाँव लगाया, क्यों सोचा मेरा अभिमान नहीं
"चुप हैं कुल-पितामह, क्या हस्तिनापुर न मलिन हुई?
पौरुष दिखा रहे अबला पर, क्या धरा वीरों से हीन हुई?

"हे कृष्ण, मुरारी, बालसखा, सर्वशक्तिमान हो मीत कहाँ
आओ बचा लो लाज मेरी, हो रही अजब सी रीत यहाँ"
करुण, कातर, आर्द्र स्वरों में, द्रौपदी कृष्ण को बुला रही
पूजिता की करुण विवशता, आसन ईश्वर का डुला रही

अवतरित हुए कृष्ण चीर में ही, कृष्णा की सुन पीर को
खींच खींच दुःशासन पस्त हुआ, द्रोपदी की चीर को
द्रौपदी को निर्वस्त्र करना, कौरव-क्षमता के पार हुआ
मोहन की देख कृपा नारी पर, धन्य धन्य संसार हुआ..!

****

कैकेयी

राजा दशरथ की चहेती रानी, मैं कैकेयी बड़ी उदास हूँ
ईश्वर को वन-वन भटकाया, मैं वो कलुष इतिहास हूँ
बड़ी अभागी किस्मत मेरी, विधाता ने वो खेल रचा
मुझे इतिहास के पन्नों में, तिरस्कृत-पात्र के लिए चुना..

राम मुझे भी प्रिय बहुत थे, फिर भी माया हावी थी
तनुज भरत के राजपाट की, दो वरदान ही चाबी थी
दशरथ चकित, स्तब्ध हुए, जब मैंने उनसे वर माँगा
मूर्च्छित होकर गिर पड़े, जब 'राम' खोने का डर जागा..

यही बात मुझे पीड़ा देती, भरत उन्हें क्या प्रिय न था?
वचन देकर भी मुकर रहे थे, क्या मेरे साथ षड्यंत्र न था?
देवासुर संग्राम में मैंने ही अरि से उनके प्राण बचाये
उन्हीं के कुल की रीति थी, प्राण जाये पर वचन न जाये

माँ हूँ अगर तो क्यों न सोचूँ, अपनी संतति का हित मैं?
कहाँ गलत हूँ यदि चाहती, पुत्र का भविष्य सुरक्षित मैं?
राम भरत के पक्षधर थे फिर एकतरफा निर्णय क्यों?
भरत जब ननिहाल गए, राजतिलक उसी समय क्यों?

राम का वन जाना भी तो नियति की मजबूरी थी
राम-रावण की जंग देखो तो लोकहित में जरूरी थी
दुष्टों का उत्पात बहुत था, उनका प्रतिकार करता कौन
राम यदि अवध में रहते, दुष्टों का संहार करता कौन?

पछतावा था मुझे बहुत, राम से क्षमा भी माँगी थी
भरत भी क्षुब्ध था मुझसे, क्यों स्वार्थी इच्छा जागी थी
कदाचित लोकहित हेतु, नियति ने यह अध्याय रचा
लीला की विधाता ने, इतिहास में मुझे तिरस्कार मिला..!

****

यशोधरा

क्यों मुझे सोती छोड़ गए तुम?
सब नेह-बंधन तोड़ गए तुम?
ऐसी क्या दुविधा थी मन में?
सुत से भी मुख मोड़ गए तुम?

चोट लगती है मेरे अहम में
थी क्या मैं बाधा तुम्हारे जीवन में?
बताते तो क्या मैं रोक लेती?
प्रश्न छोड़ गए रिक्त से मन में..

संगिनी थी मैं सात जन्मों की
सुख की, दुख की, तुम्हारे कर्मों की
सास-श्वसुर, पुत्र, जिम्मेदारियाँ
क्यों चिंता न थी तुम्हें मेरे धर्मों की?

व्यथित हूं पर मैं सब सहूँगी
महान लक्ष्य हेतु चुप रहूँगी
परंतु जब हमारा पुत्र पूछेगा
उसे कैसे आश्वस्त करूँगी?

तज दिया संसार हुई मुक्ति प्यारी
गौरव तुम मेरे मैं चेरी तुम्हारी
पर यह बात खटकती मुझको
क्या है सिद्धि मार्ग की बाधा नारी?

हे त्यागी, जाओ विदा देती हूँ
मैं भार्या तुम्हारी धीरज धरती हूँ
बुद्ध बनो, भगवान बनो तुम
नहीं स्वार्थिनी मैं, हर भार लेती हूँ...!

****

बढ़ती जाऊँगी

घर के आंगन में
खिलखिलाना, चहकना चाहती थी मैं
लेकिन गर्भ में ही मार दिया गया मुझे
दुनिया में आने की भी इजाजत नहीं मिली मुझे

खिलना चाहती थी मैं फूल बनकर
शाखाओं पर झूलती, खुशबू फैलाती
पर समय से पहले ही तोड़ ली गई
पैरों तले कुचल दिया गया मेरा वजूद

बहना चाहती थी मैं उन्मुक्त नदी की तरह
उछलती, कलकल कर बहती, पहाड़ों को पार करती
लेकिन बांध दिया गया मुझे
फिर गंदी होती गई अंदर तक खाली कर दी गई मैं

बनना चाहती थी मैं पक्षी
मापना चाहती थी आकाश की ऊँचाइयाँ
परंतु पंख नोच लिए गए मेरे
पिंजरे में घिसटने को मजबूर कर दी गई मैं

सच करना चाहती थी अपने सपने
इसीलिए मैंने हिम्मत नहीं हारी
खिलती गई, बढ़ती गई, उड़ने लगी
अब मुझे सहानुभूति नहीं, मेरा अधिकार चाहिए...।

****

देखूँगी सपने

स्वप्न लाख झूठे हों, देखूँगी सपने...
आतंक से लड़ते, भूख,
गरीबी, बाढ़, और सूखा से जूझते
पक्षपात, अवमूल्यन
बढ़ती कीमतों की कंटीली बाड़
अपराध की राजनीति, राजनीति के अपराध
और, इन सबके बीच आम की शाखाओं से झूलते
घोंसलों से झाँकती नन्हीं चिड़ियों के चूजे
खाने के लिए रेंगते विषधरों से आक्रांत बगीचे में---
हवा से कंपते पत्तों की छाया में
लम्हें भर आयी नींद में--
--परिवेश बदलने की चाहत
सुखद कल्पना का स्वप्न
--नयी जागृति का स्वप्न
--आदर्श निर्माण का स्वप्न
--वसुधैव कुटुम्बकम् का स्वप्न
--स्वप्न कि हैं सब अपने, सतत देखूँगी सपने
स्वप्न ही जगायेंगे चाह
मुश्किलें ही दिखायेंगी राह
हारना नहीं है कहीं, लड़ना है तूफानों से
बनाना है घरौंदा प्रेम का, अपनापन का
इसीलिए सुखद सपनों का संसार रचूँगी मैं
सतत सपने देखूँगी मैं
स्वप्न लाख झूठे हों, पर देखूँगी सपने..।

****

तमसो मा ज्योतिर्गमय

तमसो मा ज्योतिर्गमय!
अंतर का तम हर, द्युति भर
मन कर दे अब निर्भय!
तमसो मा ज्योतिर्गमय!

नयन अश्रु प्लावित बह झर झर!
बह जब तक कलुषित है अंतर!
पूर्ण सृष्टि कर दे आशामय, मुझे प्रेम तन्मय!
तमसो मा ज्योतिर्गमय!

राग जनित आसक्ति दूर कर!
मेरा प्रेम सत्य, शिव, सुंदर बन,
चमके नभ में ध्रुवतारा सा सुंदर कांतिमय!
तमसो मा ज्योतिर्गमय!

****

परदेश न जाये पी मेरा

ओ गगन के मेघ! तू हर हर बरस ले रोक पथ;
परदेस जाए पी न मेरा!
थक गई आँखें बरसते, पर न प्रियतम रुक रहा
अब मांगती प्रतिरोध तेरा! ओ गगन के मेघ!

देख उजड़ा चाहता है आज मेरा आशियाना,
पी हठी, बाँहें छुड़ाकर, चाहता है दूर जाना

अधर की मदिरा, कनक-तन, मुखर आमंत्रण विफल हैं
रूप से भी अधिक रूपा के लिए प्रियतम विकल हैं

दूर दिखते स्वर्ण-मृग, ऊँचे शिखर की सीढ़ियाँ हैं
आज प्रियतम के लिए, ये बाँह उनकी बेड़ियाँ हैं

और मैं आकुलमना, व्याकुलतना असहाय सी हूँ
कुछ न उनको बाँधती है, पूर्णतया निरूपाय सी हूँ

छेड़ तू ही नाद, जल-थल-वायु सब अवरुद्ध कर दे
आज उनकी कामना में तू धधक, बारूद भर दे

आज उनको रोक ले, मुझ मानिनी का मान रख ले
आज कर मेरी मदद, कल फिर न मांगूँगी मदद ये

आज उनकी कामना में सांस मैं अंतिम भरूँगी
मैं प्रिय की बाहों में ही, प्राण उत्सर्जित करूँगी

तू सरस, सह-दामिनी, ढँक नभ, चतुर्दिक डाल घेरा!
ओ गगन के मेघ! तू हर हर बरस ले रोक पथ
परदेस जाए पी न मेरा
थक गई आंखें बरसते, पर न प्रियतम रुक रहा
अब माँगती प्रतिरोध तेरा, ओ गगन के मेघ!

****

प्रेयसी

मर्यादा की बाँध तोड़कर,
बह आ उफनी सरिता सी;
प्रिये! छंद के नियम भंग कर,
पुलक नयी कविता सी...

अंग-अंग को झंकृत कर दें,
सप्तक तेरे तन के;
आ बाँहों में, छेड़ रागिनी,
कौंध दामिनी बन के...

आज कामिनी मधुबाला बन,
तू मुझको बहका दे;
अधर बनें मधुपात्र,
गात्र बन तरनातल लहरा दे...

प्रिये! शिथिल हो जाते तन मन,
इक-रसता की धुन से;
आज तोड़ दे सारे बंधन,
झर-झर बरस सुमन-से...।

****

अज्ञात आकुलता

किसकी बाट जोहती हूँ मैं?

हर क्षण, हर आहट पर आकुल,
दरवाजे को तकती व्याकुल
प्रतिपल किस अज्ञात वेदना
से मैं आज सुलगती हूँ?
किसकी बाट जोहती हूँ मैं?

छोड़-छाड़ सब काम-काज को
मूक पड़े सब वाद्य-साज को
क्यों तकती हूँ? किस स्वर से मैं
भीतर-भीतर बजती हूँ?
किसकी बाट जोहती हूँ मैं?

क्या सुनने को कान तरसते?
क्यों रह रहकर नयन बरसते?
दर्पण में क्यों झाँक-झाँक कर
मैं रह रह कर सजती हूँ?
किसकी बाट जोहती हूँ मैं?

कब? क्यों भीगा मन का कोना?
कैसे खोया सुख से सोना?
हुई घटित यह क्या अनहोनी?
यह मैं किसको भजती हूँ?
किसकी बाट जोहती हूँ मैं?

और हमारा यह पागल मन
मन ही मन सब करता अर्पण
कुछ भी व्यक्त न कर पाता है
किसके लिए तरसती हूँ मैं?
किसकी बाट जोहती हूँ मैं?

****

और भी प्रिये, पास आओ

और भी प्रिये पास आओ!
मूक क्यों तेरे अधर हैं?
लालसा से मुक्त स्वर हैं?
गात क्यों सुरहीन होकर
गद्य कहते शीत तर हैं?
यूँ न कुछ मुझसे छिपाओ
और भी प्रिये पास आओ...

चेष्टाएँ यंत्रवत् हैं
बंद अंतर्मन परत हैं
दृग अचंचल, श्वेत-आभा
कामनाओं से विरत हैं
क्या हुआ कुछ तो बताओ
और भी प्रिये पास आओ...

बोझ किस दायित्व का है?
प्रश्न किस अस्तित्व का है?
क्यों ग्रसित है चाँद मेरा?
क्यों ठिठकती भुजलता है?
व्यर्थ मन को मत जलाओ
और भी प्रिये पास आओ...

हिम शिला! निर्झर सरस बन
बज उठे संतूर सा तन
मृगदृगा, भर भर कुलाँचें
बरस बन सावन सरस घन
तन नहीं, मन भी जुड़ाओ
और भी प्रिये पास आओ...।

****

गणिक

क्या कहूँ कितनी बार टूटती हूँ मैं
हर दिन सौ-सौ बार मरती हूँ मैं
हर बार जिस्म बेचकर कमाती हूँ पैसे
कैसे कहूँ लूटते हैं मेरी देह कैसे-कैसे
हैं दिन में जो सभ्य, वे रातों के हैवान हैं
मेरे दर पर आनेवाले बड़े इज्जतदार इंसान हैं
शर्म नहीं करती हूँ, अब मैं अपने कर्म पर
न किसी जाति की हूँ, न आश्रित हूं किसी धर्म पर
समाज की सभ्य धारा के विपरीत बहती हूँ
दिन हो या रात सच मैं खुलकर कहती हूँ
अपवित्र रहकर भी समाज पवित्र रखती हूँ
तलवार की नोक पर मैं अपना चरित्र रखती हूँ
सारे बनैले खूंखार भावों को भर देती हूँ
मन की कोमलतम भावनाएँ पुख्ता कर देती हूँ
कुंवारी हूँ, सुहागन भी हूँ और विधवा भी
हूँ मैं अंधेरे भविष्य में बढ़ते बच्चों की माँ भी
मेरी मुसीबतों के लिए कोई नहीं है संजीदा
बस बाजार हूँ मेरे लिए न कोई ऊंचा है,न नीचा
पवित्र होते हैं सब काबा जाकर, गंगा नहाकर
मैं पवित्र आँसू बहाकर, बच्चों को दूध पिला कर
"शिव" हूँ, समाज का हर विषय पी लेती हूँ
मैं, वेश्या बेज्जती में भी इज्जत से जी लेती हूँ..।

****

रजस्वला

अछूत सी कमरे में पड़ी हूँ
किसी बंद कैदी की तरह
क्योंकि रजस्वला हूँ न..
छोटी-छोटी बात पर मुझे
आवाज देने वाले मेरे पिता
अब मुझे नहीं पुकारते
पूजा घर, रसोई घर, भंडार घर
सब अभी अस्पृश्य हैं मेरे लिए
चार-पांच दिनों तक अछूत हूँ मैं
ईश्वर बनने वाले संत-महात्मा
कामाख्या रजस्वला देवी को पूजते हैं
पर मुझे अछूत, अशुभ बताते हैं
क्यों? क्या अंतर है हर माँ में?
यदि रजस्वला न हो तो अपशकुनी?
क्यों है यह दोहरी सोच?
क्या नहीं जानते कि रजस्वला
होना मातृत्व की पहली सीढ़ी है?
असंभव है जननी बनना
बिना रजस्वला हुए
सृजन का बीज ढोना तो
ईश्वरीय वरदान है, शुभ है
लड़की का रजस्वला होना
सृष्टि के निर्माण का संकेत है..!

****

इक्कीसवीं सदी की नारी

हर तरह के तजुर्बों से
खुद को बहुत संवारा है मैंने..
रास्ते में समस्याएं हजार थीं,
परेशानियों में भी खुद को निखारा है मैंने..
कैसे भी हालात हों अब
उनके मुताबिक खुद को ढाल लेती हूँ मैं..
मुश्किलें कैसी भी आयें,
हल उनका निकाल लेती हूँ मैं..
डर जाती थी पहले परछाई से भी,
अब साँपों के जहर भी बेकार हैं मुझ पर..
काली बनकर काट लेती हूँ सिर,
अगर अनैतिकता का तलवार हो मुझ पर..
दिल के भाव जब सच्चे लगते हैं,
उनमें प्रेम के मैं ख्वाब भर देती हूँ..
झूठी मुस्कानें छल लेती थीं पहले,
अब हर साजिश बेनकाब कर देती हूँ..
बहुत सहेजा खुद को अबला मानकर,
अब हर पत्थर का प्रतिकार करती हूँ..
इक्कीसवीं सदी की नारी हूँ मैं,
आत्मविश्वास से अपनी जयकार करती हूँ..!

****

कौन हूँ मैं

- शीतल सी चाँदनी?
- फागुन की रागिनी?
- प्रेम,ममता अनंत?
- पतझड़ में बसंत?
- अधरों की मुस्कान?
- ईश्वर का वरदान?
- धरती की हरियाली?
- अमावस में दिवाली?
- फुदकती,चहकती चिड़िया?
- माता-पिता की गुड़िया?
- दहेज की जलती आग?
- रिस-रिस जलता चिराग?
- कभी द्रौपदी, कभी सीता?
- कभी गणिका, कभी परिणीता?
- परिवार, समाज की धूरी?
- कभी मुस्कान, कभी मजबूरी?
- जिम्मेदारी, कर्तव्य?
- करुणा, मातृत्व?
- कभी प्रेयसी, कभी मोहरा?
- एसिड से जला चेहरा?
- संघर्ष और हिम्मत?
- सुख और जन्नत?
- परिवर्तन और मशाल?
- समाज का अहं सवाल?

****

शौचालय

अँधेरे मुँह उठकर
सबके जागने से पहले
दूर खुले मैदानों में
नित्य क्रिया से निपटती थी
कभी अकेली, कभी सखियों संग
कभी झाड़ियों में, कभी खुले खेत में
कीड़े-मकोड़ों, असुरक्षा, लज्जा और
बाहर-भीतर के डर से लड़ती थी
कई बार दरिंदों का सामना किया
कई बार बची हवस के घेरे से
पीछा करतीं कुछ वहशी आँखें
बार-बार सँभालती थी खुद को
दोपहर की धूप में, रोशनी में
कुदरत से अंदर ही अंदर लड़ती थी
किसी तरह लज्जा छुपाती अपनी
बेबस सी विवश हो आगे बढ़ती थी
मदिरालय खुले, नृत्यालय बने
पर शौचालय का किसी ने न सोचा
अब खुश हूँ कि किसी की सोच
मुझ तक पहुँची है, समझता है कोई
मेरी जरूरतें, मेरी विवशता
कितनी तड़पी हूँ मैं निहायत जरूरी चीज,
एक शौचालय के लिए,
जरा सोचो तो...!

****

अम्ल-पीड़िता

शायद गुनाह ही था
मेरा लड़की होना
उस पर से सुंदर होना
उस गली से होकर गुजरना
छींटाकशी का प्रतिकार करना
थोपा हुआ प्रेम नकारना
अपनी शक्ति को समझना
पर हार हुई मेरी
तुमने दिखाई तेजा की शक्ति
अब भी चेहरा वही है
पर झुलसा हुआ
मीडिया की खुराक बनता हुआ
लड़की नहीं अब खबर हूँ मैं
सुंदरता बदल गई है
डर में, सहानुभूति में, दया में
पिता की चिंता, मां की झल्लाहट में
परिवार की दूरियों में
शरीर, आत्मा, लड़की- वही है
पर बदल गया है परिवेश
सुंदर चेहरा डराता है अब
लेकिन, टूटी नहीं हूँ, हिम्मत हूँ मैं
चेहरा जला है मेरा, हौसला नहीं
फिर बढ़ूँगी, बेलें चढ़ूँगी और
बदल दूँगी ये कायर समाज...!

****

अविवाहिता

हताश, थके से पिता
लौट आये हैं उम्मीदों के दरों से
डूबे हैं भँवर में, डूबते-उतराते
खारे समुद्र निराशा के
होठों पर मृत सी चुप्पी लिए...

कातर नजरों से देखती
असहाय सी माँ, अंदर तक टूटती
पिता के निःश्वास में तलाशती
उम्मीद, आशा का तिनका
कोसती कोख, दरकती धरती...

ढहता मेरे अंदर
एक नमक का ढेर, सूखी रेत सा,
पतझड़ के उदास रंग सा
भाई-भाभी की अनकही पीड़ा सी
माँ-बाप पर लदी भारी गठ्ठर सी
मैं, सूखी, ठूँठ टहनी सी
अपनी हार से अंदर ही अंदर लड़ती
स्वयं को अपने अपूर्ण सपनों की
पहरीदारी हेतु तैयार करती...

क्या मुझे आंगन के पार की दुनिया का हक नहीं?
नहीं बननी है ड्योढ़ी की अनचाही बेल
अपनी जड़ें स्वयं बनाने की चाहत लिए
अस्तित्वधारी, फलदायी सम्पूर्ण वृक्ष
बनने का जुनून लिए खड़ी मैं, अनब्याही लड़की..।

****

घर से भागी हुई लड़की

मुझे चाहिए था खुला आकाश
जहां मैं पूरे पंख फैलाकर उड़ सकूं
जी लूं हर पल अपनी मर्जी से
पर मेरे पंख काटे जा रहे थे
मेरी उड़ान उन्हें डरा रही थी
सशंकित सी, उड़ने को आतुर
अपना अस्तित्व, अपने पंख बचाकर
एक दिन मैं भाग गई घर से....
मुझे चाहिए थी पूरी धरती
जहां विचरें मेरे सपने,
दौड़ लगाएं मेरी ख्वाहिशें, हसरते
उछलूँ, नाचूँ, प्यार करूँ सबसे
पर मेरे पांव में बेड़ियां डाली जा रही थीं
अपने अधिकार और वजूद को बचाकर
एक दिन मैं भाग गई घर से...
मुझे चाहिए था मनचाहा प्यार
जिसे अंतर्मन से चाहूँ, दुनिया बना लूँ
पर मेरे प्रेम, चाहत पर पहरा था सबका
धर्म, जाति, लिंग से परे का मेरा प्यार
अस्वीकार था उन्हें, तोड़ रहे थे मन का बंधन
मेरे प्यार की हत्या करना चाहते थे वे
अपने प्रेम को साथ लेकर
एक दिन मैं भाग गई घर से...!

****

हूँ मैं आज नारी

हौसलों से भरी हुई मैं नारी
न अबला, न नादान, न बेचारी
जीती हूँ आत्मविश्वास से
मेरे अंदर भरी है "खुद्दारी"
हूँ मैं आज की नारी...

हर क्षेत्र में हैं अब मेरे कदम
तोड़ चुकी हूँ "कमजोर" का भरम
लेखिका हूँ, अध्यापिका हूँ मैं
हूँ सफल व्यवसायी और व्यापारी
हूँ मैं आज की नारी...

अंतरिक्ष में मैं चल रही हूँ
सब अपने हिसाब से बदल रही हूँ
पत्नी हूँ, माँ हूँ, बहन हूँ पर
बन रही हूँ आशा की चिंगारी
हूँ मैं आज की नारी...

पुरुषों से भी लोहा मनवाया है मैंने
मर्दों के काम भी कर दिखाया है मैंने
मैं हूँ स्वर्णिम युग की निर्मात्री
पुरुष-वर्ग पर हो रही हूँ भारी
हूँ मैं आज की नारी....!

****

मिथ्यावादिनी

बड़ी मोहिनी सूरत उसकी, मुख में भरी रस भरी बातें
बड़ी मीठी कहानी सुनाए, यादगार बन जाए मुलाकातें..।

गोल गोल गोली सी बोली, तोड़ मरोड़ कर तथ्य बताए
सच पकड़े जाने के भय से, झट आँखों में आंसू लाए..।

सबको आपस में मिलने न दे, गलत बात पर कसम भी खा ले
भावनाओं से खेल सबके, बड़ी सफाई से सच छुपा दे..।

पूजा ध्यान में दिल न लगे, लगाई बुझाई ही धर्म है उसका
रिश्तों से क्या लेना देना, महंगे शौक ही कर्म है उसका..।

कितना भी पढ़ लिख ले इंसां, झूठ के सामने एक चले न
गुमराह करके सबको नचाये, हो भीष्म के जैसा ज्ञानी भले न..।

छक्के छुड़ा दे सच्चाई के, अपने स्वार्थ से कर दे बहरा
हर वक्त रहता है पास उसके, एक नया नकाब एक नया चेहरा..।

क्या-क्या गुण बताऊँ उसके, वह जीते भरोसा ज्ञानी भी उलझे
बिना माचिस घर खाक बना दे, उसे जो भोगे वही उसे समझे..।

****

वृद्धा की व्यथा

जब जीवन का सावन बीता, जरा अवस्था आयी,
थम-थम जब चल पड़ी जिंदगी, तब पति ने सुध पायी..

दिल में उभरी दस्तक देते, घर-चौके की मीता,
हाय!बीत जब उमर गयी, तब सुध आयी परिणीता..

चाँदी बनते केश, लकीरें, उगतीं अरुणाई में
कमनीय वह देह-यष्टि, ढलती सी परछाई में

कहाँ हास-परिहास रास? सब लील गई गृहस्थी,
खोये सब कर्तव्य बोध में, कहाँ मिली वह मस्ती?

अलग-अलग सबसे होकर अब, नव जीवन का जीना,
जीवन में मधुमास बुला, छककर यौवन रस पीना..

हाय,मगर संकल्प! बुढ़ापे, क्या नसीब यह साथ?
दब जाता सब उठा हुआ, उफान सोच यह बात..

बिदक बहू कर देगी आहत, बोल दबी सी बोली-
"इन बुड्ढे-बुड्ढी को देखो, सूझी रास- ठिठोली.."

लज्जानत! अरमान दबाये, मन मसोस रह लेते,
हाय रे नियति, घरबार मुक्ति की, साँस न लेने देते...।

****

बदली-बदली सी माँ

खो गया है आँचल बदल गई है माँ
वो लोरियों वाली रातें न जाने गयीं कहाँ..।

अब फुरसत कहाँ माओं को ऑफिस से और किट्टी से
जज्बात हो रहे अब तो निर्जन, बंजर मिट्टी से..।

सुबह से शाम तक नपती रहती दूरियाँ माईलों की
रहती ज्यादा बच्चों से, चिंता दफ्तरी फाईलों की..।

आजादी के जज्बे में, परिधान बदल गए माँ के
जीन्स,टॉप, मिडी में, चले गए सुकूं जहाँ के..।

गर्म फुलकों वाला खाना, निकल गया थाली से
वो ममता भरे निवाले, बन गए पुलाव ख्याली के..।

माँ की व्यस्तता से आया, अब कुक रखने का फैशन
बेसमय, बेस्वाद खाने से, बीमार हो रहे तन-मन..।

हर छोटे-बड़े बच्चों को, अब संभालती है आया
जिस परिस्थिति से वो आयी, वैसा ही संस्कार सिखाया..।

पढ़ाई में भी बच्चे अब, रहते कोचिंग के भरोसे
जब नंबर कम आ जायें, सब बच्चों को ही कोसें..।

था माँ का स्वरूप निराला, हर पल वो हमारी गुरू थी
अपने जीवन की शिक्षा, हमने तो उन्हीं से शुरू की..।

अब मसोस रहती हैं, हर कामकाजी महिला
घर की खातिर ही निकली, जब मँहगाई से दिल दहला..।

जरा सोचें अंतर्मन से, है घर बड़ा या समाज
हर बच्चा दिग्भ्रमित हो रहा, बढ़ रहा आतंक का राज..।

दिन-रात मेहनत करके भी, अगर खो दें हम संस्कार
ये बच्चे ही तो बनायेंगे, हमारे भविष्य का संसार..।

अब संभलो व्यस्त माँओं, खरे उतरो हर परीक्षा
सुख और खुशी तभी जब, स्वयं दो बच्चों को शिक्षा..।

****

नदी सी नारी

चंचला नदी हूँ मैं,
एक मीठा स्रोता
बहती पवित्र निर्मल धारा
चट्टानों से जूझती, मचलती,
अठखेलियाँ करती, गुनगुनाती,
शीतलता देती, सींचती हरियाली
जीवन देती, सतत चलने वाली...
बाँध दी गई मैं,
विवश की गई रुकने को
ताकि प्यास बुझा सके
दुनिया का स्वार्थ
लोग डरने लगे थे
मेरी उमड़ती लहरों से
अंतर्मन की गहराई,
और भँवर में डूबने से
नियम बने, बाँधने के तरीके बने
मुझे स्वच्छंद बहने से रोका गया
क्योंकि मैं एक स्त्री हूँ..
थमी हूँ, चुपचाप हूँ अभी
अंदर कहीं उम्मीदों का झरना है,
एक आग है भीतर कहीं
पूरी शक्ति से एक दिन
तोड़ दूँगी अपनी सीमाएं
फिर बह चलूँगी
आत्मसात करके
ये सारा जहान...।

****

मनिहारिन

अँधेरे मुँह उठकर
चूल्हा जलाती है
पति, बच्चों को रोटी देकर
घर से सिर पर टोकरी लिए
निकल जाती है मनिहारिन
घर-घर घूम-घूमकर बेचने
चूड़ी, कंघा, आईना, बिंदी...

सिर पर पल्लू लिए,पर
फटी साड़ी से झाँकता यौवन
कंधे से लटकी पुरानी
थैली से छुपाती है
हर घर के आगे रुककर मनिहारिन
आशा भरी निगाहों से पूछती है- "लोगे,
चूड़ी, कंघा, आईना, बिंदी..?"

घर की रोटी, बच्चों के सपने
टोकरी में ढोती है
अपनी ख्वाहिशें, उम्मीदें
अपना स्वाभिमान बचाती है
फेरी लगाती घूमती है मनिहारिन
गली-गली में आवाज लगाती है-
"चूड़ी, कंघा, आईना, बिंदी...।

****

मजदूरिन

सिर पर ईंटों का बोझ उठाये
स्वेद बूंदों से लथपथ कुछ सकुचाये
पैबंद लगे पल्लू से मुखड़ा छिपाये
बांस की सीढ़ियां चढ़ी जा रही थी
वो मजदूरिन अपनी किस्मत गढ़ी जा रही थी..

वृक्षों पर साड़ी का झूला बनाकर
फूल से बच्चे को उसमें लिटा कर
बोझ उठाकर फिर झूला हिलाकर
लल्ला को पुचकारती चली जा रही थी
वो मजदूरिन माँ का फर्ज निभा रही थी...

दो सूखी रोटी से कर भूख को शांत
गर्भ में जीवन, मुख श्रांत- क्लांत
अथक परिश्रम और मेहनत नितांत
अपना हाथ जगन्नाथ सिद्ध कर रही थी
वो मजदूरिन परेशानियाँ अवरुद्ध कर रही थी...

फटा लिबास, कँधे पर जिम्मेदारी
अभावों में जीवन, गरीबी और लाचारी
थके शरीर पर भी मुस्कुराहट प्यारी
मुश्किलों में भी स्वाभिमान उठा रही थी
वो मजदूरिन प्रेरणा बन जग को लुभा रही थी...।

****

सीख पतंग की

नीले से अंबर में रंग बिरंगी पतंगें
नन्हें बच्चों की तरह कुलाँचे भरती हैं..
लहराती हैं, झूमती हैं
आपस में बतियाती हैं
रह-रहकर खुश होतीं
एक-दूसरे से गले मिलती हैं..
हँसती है डोर
पतंगों का हौसला देखकर
थामे रखती है उन्हें
माँ की ऊँगलियों की तरह..
लपेट लेती है चरखी
जब तूफां उन्हें सताते हैं
छुपा लेती है
आंचल में हमारी मम्मियों की तरह..
डोर और पतंग का प्यार
सिखाता है हमें एक जमीनी सच
जुड़े रहें तभी अस्तित्व
अलग अगर हो जायें
तो हैं दोनों बेमानी..
मस्त रहती है पतंग
जब तक जुड़ी रहती है
कहीं की नहीं रहती
जब उड़ने के गुमान में
तोड़ लेती है अपना संबंध जमीनी..
समाज तभी तक
जब तक है हम में
मधुर संबंध, प्रेम का रंग..
निरर्थक, एकांकी हैं
अलग होकर एक दूजे से
समाज और हम
सिखाती है हम सबको यही ये उड़ती पतंग...!

****

प्यारा खत

साड़ी की तहों के बीच,
एक खत पुराना मिला...
यादों के दरवाजे खोल कर,
वो गुजरा हुआ जमाना मिला...
बिखर गए मोती बीते लम्हों के,
उन्हीं में वह खोया दिल दीवाना मिला...
बचपन की मस्ती और अल्हड़पन के बीच,
रंगीन गुब्बारों का उड़ाना मिला...
कुछ दोस्तों की खुशबू फैल गई,
फिर बात-बात पर हँसना-मुस्कुराना मिला...
टेढ़े-मेढ़े मासूम अक्षरों के बीच,
अटका हुआ वो प्यारा दोस्ताना मिला...
फैली सी स्याही और भीगे हुए शब्दों में,
भीग कर वो बरसात में नहाना मिला..
वो सारे बिछड़े खुशनुमा लम्हें
और, वो जादुई वक्त मस्ताना मिला...
फटे से धूमिल लिफाफे में मुझे,
मत पूछ कि क्या क्या खजाना मिला..!

****

आईना

कल जब मैंने आईना देखा,
खुद को बहुत परेशाँ देखा..
थी बालों में सफेदी, और, गालों पर झुर्रियां...
सोचने लगी मैं- "हाऽऽयय!
ये मेरा अक्स है क्या...?
उम्र हो गयी इतनी,
या, आईना बदल रहा है?
जवां-जवां सा दिल मेरा,
बुढ़ापे में ढल रहा है..?
फिर खुद समझाया दिल को-
"अब आईना नहीं रहा वो,
बदल गया है, जमाने-सा,
देखो, चेहरा दिखाए कैसा..?"
बरसों पहले देखा था,
तब मैं कितनी सुंदर थी..
जलता है आईना मुझसे,
अब समझी बात अंदर की..
बालों की ये सफेदी,
आसान कहाँ है पाना..?
आती है समझदारी से,
क्यों कहें उम्र का जाना..?
गालों पर उभरी लाइन,
हैं तजुर्बों के ही साइन..
आँखों में बसे जब मोतियाँ,
क्यों कहें उसे हम झुर्रियाँ..?
बड़ा बेवफा निकला आईना,
जरा भी लाज इसे आयी ना..
इसे इतना सँभाल के रखा,
फिर भी देता है धोखा..
दोस्त मेरे, अब सुन लो, समय आ गया है, सँभल लो..
चाहे तो 'बुड्ढा' कहलाओ, या फिर, आईना ही बदल दो..!

****

सृजनकर्ता

मौन है वक्त
निःशब्द है वीरों की सभा
जड़वत् खड़ा है पीपल का वृक्ष
मौन है समस्त पुरुषों का समाज

मर्यादा के राम, गीता के कृष्ण, ज्ञान के बुद्ध
यों ही नहीं बने हैं भगवान
ये कर्जदार हैं नारी जाति के
इतिहास के पन्नों में नारी
तड़पी है, पिसी है, अपमानित हुई है
तब जाकर ये भगवान बने हैं

बड़ा आसान है अबला कह देना
परन्तु, परम शक्ति बिना,
असंभव है वेदना सह लेना
पुरुषों को श्रेय देकर खुद पीछे रही है
और समाज ने इसे दुर्बलता समझ लिया
जरा झुक क्या गई नारी
पुरुषों ने उन्हें पायदान बना लिया
उनका स्वाभिमान, अस्तित्व रौंद डाला
और खुद के लिए जहान रच लिया

परन्तु, परिस्थितियाँ बदल रही हैं
कल पुरुषों को बनाया,
आज खुद के लिए खड़ी हैं
असीम शक्ति है, सृजनकर्ता है नारी,
वह अपने लिए नया समाज खुद गढ़ेगी..

****

मेरी चाहत

उड़ने की चाहत में पंख फैलाये बैठी हूँ
सितारों की चमक का स्वप्न सजाये बैठी हूँ
हौसलों की उड़ान की आस लगाये बैठी हूँ
दूर मंजिल को पाने की राह बनाये बैठी हूँ

कुछ नहीं है, जो मुश्किल है
अगर हौसला है तो हासिल है
कोमल हूँ मैं पर कमजोर नहीं हूँ
सृजनशक्ति हूँ, महज शोर नहीं हूँ

जन्मदात्री हूँ, पीड़ा का सुख जानती हूँ
दुःखों में भी सुख पहचानती हूँ
चहारदीवारी की लक्ष्मण-रेखा तोड़ चुकी हूँ
दकियानूसी तानों पर रोना छोड़ चुकी हूँ

ईश्वर की हर कृपा से आबाद हूँ मैं
लगता तो है, पर क्या आजाद हूँ मैं?
बाहर फैलाव है, खुला आकाश है
रौशन कर दे मुझे, ऐसा परम प्रकाश है

परिवार मेरा है, समस्याएँ भी मेरी हैं
सफलताएँ भी तो हौसलों की चेरी हैं
अपनी परेशानियों से खुद लड़ूँगी मैं
परिवार को साथ लेकर सदा बढ़ूँगी मैं..।

****

मुझे नारी ही रहने दो

मेरी चाहत नहीं मैं देवी बनूँ
शक्ति का पर्याय, करुणा की वेदी बनूँ
चाह बस इतनी कि इन्सान रहूँ, खुलकर जिऊँ
अविरल धारा सी बहूँ, आसमान में उड़ूँ
सपने देखूँ तो उसे पूरा करूँ
अपने प्रेम, अपनी ममता को फलता देखूँ
तुम बस, हमारी खुशियाँ
हमारी चाहतों में पलने दो
देवी नहीं हूँ, नारी हूँ मैं
मुझे बस,नारी ही रहने दो...

देवी का दर्जा देकर तुमने बस लूटा है
न कह सकी, न दिखा सकी
दिल कैसा मेरा टूटा है
सीता, द्रौपदी, यशोधरा, दामिनी
जाने कितनी बार मैं बलि चढ़ी हूँ
मैंने तुम्हें संसार दिया पर तुमने दिया बाजार
झूठी तसल्ली, खोखली बातें अब बंद करो
मुझे मेरे गहरे जख्म अब सीने दो
मत रोको, अपनी व्यथा खुलकर कहने दो
मैं देवी नहीं हूँ, नारी हूँ
मुझे बस, नारी ही रहने दो...।

****

वात्सल्य

जिस क्षण से तू
मेरी कोख में आया है
वात्सल्य से लबालब हूँ
ममता से भर गई मेरी काया है..
नैनों में तेरे कोमल
ख्वाब लहराने लगे हैं
तेरे नन्हें कोमल पाँव
डगमगाते से मेरी तरफ आने लगे हैं..
मेरी ममता तुझे अपनी
गोद में महसूस करती है
तेरी निश्छल मुस्कान
प्रसव-पीड़ा में भी
आनंदित रहने को मजबूर करती है..
जब तेरे नन्हें लब
मुझे "माँ" कहते हैं
मेरी आँखें मुस्कुराती हैं
छातियों में तेरे लिए
वात्सल्य छलकते हैं..
बिना किसी शर्त मेरी ममता
हमेशा रहेगी तेरे लिए
मैं रहूँ या न रहूँ मेरी प्रेम धारा
हमेशा बहेगी तेरे लिए..
मुझे पता है कल तू भी
थाम लेगा मुझे
जब मैं बूढ़ी हो जाऊँगी
ऐसी ही ममता लुटायेगा मुझपर
मैं तब अनन्य प्रेम में खो जाऊँगी..
और, उस दिन पराकाष्ठा पा लेगा
तेरे लिए छलकता मेरा वात्सल्य..

****

ऐसा नहीं है कि...

ऐसा नहीं है कि-
औरत हूँ तो बस नशा है मुझमें
पत्नी हूँ, माँ हूँ, बहन हूँ,
एक दुआ है मुझमें...

ऐसा नहीं है कि-
संगरमरमर के साँचे में ढला जिस्म हूँ केवल
नमी हूँ, आग हूँ, धरती, आकाश हूँ
जीने के लिए जरूरी हवा हूँ शीतल...

ऐसा नहीं है कि-
बस मुहब्बत, खुशबू, अदा है मुझमें..
इबादत, समर्पण, त्याग हूँ, लेकिन
मेरे अंदर भी एक अना है मुझमें..

ऐसा नहीं है कि-
पुरुषों के खिलाफ कोई खता है मुझमें
वे जो इतना डरते हैं मेरी उड़ान से
कुछ तो है जो जमाने से जुदा है मुझमें...

ऐसा नहीं है कि-
हमेशा दबी, कुचली, बेचारा सा कोई राज हूँ मैं
हिम्मत हूँ, हौसला हूँ, कोशिश हूँ
अपनी नजरों में बदलता हुआ आज हूँ मैं..

****

नहीं भूली है औरत होना

बूढ़ी हो चुकी है वह
बन गई है नानी, दादी
झुक कर चलती है
बोलती है कम, खाती है कम
पर उसमें बसती है एक
छोटी नन्हीं सी बच्ची,
जो मचल जाती है जब
चलती है बातें गाँव की,
जब बनते हैं उनके पसंद के
तीखे, मीठे देसी व्यंजन,
घर में होता है कोई उत्सव
छठी, विवाह, उपनयन
तब नाचती है ठुमक-ठुमक
भूलकर जोड़ों का दर्द,
बुढ़ापा और झुकी कमर
हो जाती है वाचाल सी
हंसी ठिठोली करती
गाने गाती-लोकगीत
और पुरानी फिल्मों के गाने
लेकिन इन सबके बीच
नहीं भूलती है वह
सिर पर आंचल रखना
कमजोर याददाश्त में भी
वह बूढ़ी बच्ची
नहीं भूली है औरत होना...।

****

आँखों में आँसू और नहीं

आँखों में आंसू और नहीं
बहुत रो चुके बहुत खो चुके
बलि चढ़े कुर्बान हो चुके
खुशियां सब आंसू में धो चुके
पर जग ने किया कभी गौर नहीं
अब ये आंसू और नहीं..

मां बाप ने कहा पराया धन
दहेज प्रथा ने तोड़ा हमारा मन
समाज ने शोषण किया हमारा तन
घुट घुट जीते रहे हम जीवन
हम बदल देंगे यह दौर यही
अब ये आंसू और नहीं..

जिन बच्चों को चलना सिखलाया
संस्कार दिए, जीना बतलाया
भूखे रहकर भी जिन्हें खिलाया
वे बड़े हुए तो हमें भुलाया
अब अपनी लाचारी का शोर नहीं
अब ये आंसू और नहीं..

अब तो हमने भी ठान लिया है
अपनी मंजिल पहचान लिया है
अधिकारों को भी जान लिया है
हक लेकर रहेंगे मान लिया है
बाँधेंगे प्रेम डोर से जमीं
अब ये आँसू और नहीं..!

****

बदल रही हूँ मैं..

ये किसी जादू का असर है
या मैं बदल रही हूँ..?
किसी खुशी ने दर खटखटाया है,
या मैं खुद ही मचल रही हूँ...?
न जाने क्यों अब
किसी भी बात पर नाराजगी नहीं होती
सब कुछ अच्छा और प्यारा लगता है
भले उसके लिए
पहले से कोई दीवानगी नहीं होती..
कोई बुरा भी करे तो दिल पर नहीं लेती,
माफ कर देती हूँ..
जो सोचती हूँ, बस कह देती हूँ
बोझ नहीं रखती
मन साफ कर लेती हूँ..
खुद पर भरोसा बढ़ सा गया है..
अंदर जो रिक्त था
वहाँ कोई ईश
मानो वजूद अपना
गढ़ सा गया है..
खुद में ही मैंने
पा लिया है खुद को..
अस्तित्व मेरा जो खोया था कहीं
लौटा लाया है मुझमें मेरे सुधबुध को..
ये किसी नये सूरज का आगाज है..
या मेरे अंदर कोई नयी, परिपक्व नारी पनप रही है...!

****

उठो ललनाओं

काल की गति निरंतर है
दिशाएँ आवाज लगा रहीं
भविष्य तुम्हें बुला रहा
स्वतंत्रता द्वार खोले खड़ी
नवयुग निर्माण का समय है
उठो ललनाओं, हिम्मत करो
अब प्रगति का पत्थर धरो...

कमजोर नहीं, सृजनकर्ता हो
जननी हो, सृष्टि रचयिता हो
आहट हो स्वर्णिम आगत की
संस्कार, संस्कृति की आहट हो
नव इतिहास का सृजन समय है
उठो ललनाओं, ममता की मूरत
बदलो प्रेम से इस धरा की सूरत...

शिक्षा हो या अर्थ जगत हो
हर क्षेत्र में तुम्हारे कदम हों
भावना का प्रतीक, तुम अवतारी
तुम्हीं रामायण, तुम्हीं हो गीता
रूढ़ी विवशताएँ तोड़ दो तुम
हर आँधी, तूफान मोड़ दो तुम
उठो ललनाओं, नव प्रतिमान गढ़ो
हर बाधा हराकर, बस आगे बढ़ो...।

****

नाम - अर्चना अनुप्रिया
जन्म - पटना, बिहार
ईमेल - archanaanupriya123@gmail.com
वेबसाइट - www.archanaanupriya.com

शिक्षा - एम.ए.एल.एल.बी., एल.एल.एम., पोस्ट ग्रैजुएट डिप्लोमा इन मैनेजमेंट, डिप्लोमा इन फैशन डिजाइनिंग
व्यवसाय - अधिवक्ता, शिक्षिका, लेखिका
विशेष - क)पेशे से वकील होते हुए भी साहित्य में खास रुचि
ख) महिलाओं तथा जरूरतमंदों के अधिकारों के लिए प्रयासरत
ग) पत्र-पत्रिकाओं में यदा कदा रचनाओं का प्रकाशन
घ) आकाशवाणी में साहित्यिक वार्ता
प्रकाशन - साझा संग्रह एवं एकल संग्रह
सम्प्रति - स्वतंत्र लेखन एवं समाज सेवा

हिन्द व हिन्दी का सम्मान, है प्रमाण देशभक्ति का.. आइए करें सृजन, शब्द से शक्ति का...

15, नेहरु चौक, मेन रोड वारासिवनी, जिला- बालाघाट (म.प्र.), पिन 481331, मो.- 9424765259, ईमेल- antrashabdshakti@gmail.com

पं.क्र. (04/21/05/207665/19)
अन्तरा शब्दशक्ति

अन्तरा शब्दशक्ति के लिंक्स
Website:- www.antrashabdshakti.com
Facebook page:- https://www.facebook.com/antrashabdshakti/
Fecbook group:- https://www.facebook.com/groups/antraashabdshakti/

978-93-5372-247-0

मूल्य 250/-